चिन्तन

स्पिक मैके

स्पिक मैके प्रयास
के बीज मूल्यों का आर्य प्रतिबिंब

चिंतन

स्पिक मेके प्रयास के
बीज मूल्यों का आर्य प्रतिबिंब

स्पिक मेके स्थापना की 30वीं जयंती
पर प्रकाषित पुस्तिका

चिंतन : स्पिक मेके प्रयास के बीज मूल्यों का आर्य प्रतिबिंब
स्पिक मेके प्रकाशन, 2007

अनुवाद : सत्य मोहन वर्मा

चिंतन : स्पिक मैके प्रयास के बीज मूल्यों का आर्य प्रतिबिंब, उत्कृष्ट रचनाओं का वह अनूठा संग्रह है जिसकी कई सारी कृतियाँ संग्रह में आने से पहले राष्ट्रीय समाचार साहित्य अभियान की कलमकारी 'संदेश' का प्रत्ययात्मक मोड़ बन चुकी हैं; अनेक को इसका श्रेय जाता है कि उन्होंने भारतीय दर्शन, आचार संहिता सिद्धांत जैसे संस्कृति का स्वर्ण किरीट कहे जानेवाले पृष्ठों को पीढ़ी–दर–पीढ़ी की मानस दृष्टि के आगे रखा है तो शेष विचारों, परिसंवादों और नये प्रयोगो की सकारात्मक प्रक्रिया के गलियारों से गुज़रने के बाद की प्रभावकारी छवि की प्रतिलिपियाँ हैं। विगत तीस सालों में स्पिक मेके ने अपने प्रयोजन को जिस अभिजात्य निरंतरता के साथ गति देकर, खुद का मार्ग निर्देषित कर, अपने को स्वयंसिद्ध की कसौटी पर खरा उतारा है, उसे एक साथ लिपिबद्ध कर सबके आगे रखना इस ग्रंथिका का उद्देष्य है।

स्वेच्छा से अपनी सेवा समर्पित कर इस सर्वहित काम को परिणाम तक लेकर आने वाले लोगों की एकमत, एकजुट कोशिशें तीन महाद्वीपों में अपना विस्तार रखती हैं। उनके लिए यह सबकुछ करना ऐसा अभूतपूर्व अनुभव है जिसमें एक ओर चुनौतियों का सामना करने का रोमांचकारी आनंद था तो दूसरी ओर विजय के सम्मान से खुद को मंडित देख पाने की खुशी भी थी। चतुर्दिक फैले छोटे–बड़े विविध कामों और रोज़ नई गति पकड़ती तकनीक के दो किनारों को मिलाने के लिए सधे हुए सुरों की तरह समन्वय का महासेतु बाँध पाना असंभव नहीं तो आसान भी नहीं था पर मुश्किल को कर पाने की इच्छा होती ही ऐसी है जो करनेवाले को आत्मप्रेरणा से भरती है, कठिनाइयों को आत्मसात कर लेने का जीवट देती है और साथ ही खुलकर देती है गौरव कर पाने की संजीवनी भावना।

हमारी कामना है – गर्व का जो भाव इस प्रतिबिंब को आप पाठकों तक पहुँचाने वालों को मिला, आपको भी मिले जब आप इस प्रतिबिंब से होकर गुज़रें।

विषय औत्सुक्य

प्रस्तावना	5
सार तत्व : स्पिक मेक	11
संप्रति : युगवार	21
आज का भारत	29
जीवन से होकर या जीवन यायावर	43
मन दरबार	51

प्रस्तावना

छठवें दशक के अन्तिम चरण में, इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी (आई.आई.टी.) के छात्रों के रूप में हम जैसे बहुत सारे लोग पाश्चात्य् संगीत और वस्तुतः जो भी पाश्चात्य् था, उसके दीवाने थे। हमारे एक शिक्षक हर वर्ष भारतीय शास्त्रीय संगीत का पूर्ण रात्रि कालीन कार्यक्रम ''ग्रीन एमेच्योर्स नाइट'' आयोजित करते थे (मुझे अभी तक इसका आशय समझ नहीं आया)। यह एक बड़े से शामियाने में आयोजित होता था और हम भी उस कार्यक्रम में शामिल होते थे पर शास्त्रीय संगीत सुनने के लिये नही अपितु पधारे हुये 'विशिष्ट मेहमानों' को देखने के लिये। संगीत तो हमारी अंतिम प्राथमिकता होती थी।

साल गुज़रते गये, हम स्नातक हुए और हम में से कई लोग विदेश चले गये। सातवें दशक के पूर्वार्द्ध में न्यूयार्क के कोलम्बिया विश्वविद्यालय में पी.एच.डी. करने के दौरान एक दिन मेरी नज़र ''विलेज वॉयस'' नामक साप्ताहिक समाचार पत्र में छपे एक विज्ञापन पर पड़ी जो एशिया सोसायटी के तत्वावधान में ब्रुकलिन एकेडमी ऑफ म्यूज़िक द्वारा आयोजित उस्ताद नसीर अमीनुद्दीन डागर व उस्ताद ज़िया फरीदुद्दीन डागर के ध्रुपद गायन के कार्यक्रम के बारे में था। हम में से कुछ ने कहा चलो देखें (सुनें नहीं)। हम में से कोई भी ध्रुपद या डागर के बारे मे कुछ नहीं जानता था।

जब मैं कार्यक्रम में गया था तो जमीन पर चल कर किन्तु जब वापिस लौटा तो जमीन से एक इंच ऊपर चल रहा था। आई.आई.टी. के दिनों में मेरे भीतर बोया गया एक बीज अद्भुत पौधे के रूप में विकसित होने लगा था। विज्ञान की ''ब्लैक बॉक्स'' अवधारणा मेरे उस अनुभव का सटीक वर्णन कर सकती है। मुझे ये तो पता था कि उस बॅाक्स में क्या गया और क्या बाहर आया पर उसके अंदर क्या हुआ यह पता नहीं था।

मैंने जल्द यह महसूस कर लिया कि जो कुछ मेरे साथ हुआ वह दूसरों के साथ भी हो सकता है। कुछ समय बाद मैंने कोलम्बिया विश्वविद्यालय के इंडिया क्लब के अंतर्गत न्यूयार्क से गुज़रने वाले कई महान शास्त्रीय

संगीतज्ञों के कार्यक्रम आयोजित करना प्रारम्भ कर दिया। मैंने शास्त्रीय संगीत भी सीखना शुरू किया और पी.एच.डी. पूरी करने के बाद न्यूजर्सी में 'बेल लैब्ज' में काम करना शुरू किया। इस बीच मै लगातार संगीत कार्यक्रमों में शामिल होता रहा और स्वयं सीखना भी जारी रखा। सन् 1976 में आई.आई.टी. दिल्ली में अध्यापन हेतु मैं भारत वापस आया।

मुझे याद है एक दिन मैंने अपने छात्रों से पूछा था कि क्या किसी ने उस समय के सर्वश्रेष्ठ सितार वादक पं० निखिल बैनर्जी के बारे में सुना है या नहीं – वे उस समय जीवित थे। एक भी छात्र ने सकारात्मक उत्तर नहीं दिया। इस घटना ने मेरे अंदर खतरे की एक घंटी बजा दी और मैने इस संबंध में कुछ करने का निर्णय लिया। उस समय मैं मेकैनिकल इंजीनियरिंग के अंतिम वर्ष के छात्रों को ऑपरेशन्स–रिसर्च पढ़ा रहा था। उस कक्षा के साथ हमने ''मेकैनिकल इंजीनियरिंग फाइनल इयर ऑपरेशनल रिसर्च ग्रुप'' का गठन किया और एक संगीत कार्यक्रम आयोजित करने का निर्णय लिया। हमने इस कार्यक्रम का सघन प्रचार किया और मुझे पूरा विश्वास था कि हम 1,500 की क्षमता वाले कॉन्वोकेशन हॉल को कम से कम आधा तो भरने में कामयाब हो ही जाएँगे। कार्यक्रम शुरु होने से पूर्व हॉल में लगभग पाँच लोग थे। कार्यक्रम प्रारम्भ हुआ तो संभवतः दस लोग रहे होंगे और जब पहला राग समाप्त हुआ तो हम पाँच पर वापिस पहुंच गये थे। एक खराब शुरुआत! किन्तु हमने हार नही मानी। फिर अगले वर्ष पूरी कक्षा ने सहभागिता की और इसे 'मेकैनिकल इंजीनियरिंग फाइनल इयर' की प्रस्तुति बना दिया। हमने क्योंकि अपनी पिछली गलतियों से सबक सीख लिया था, इसलिये यह कार्यक्रम थोड़ा अधिक सफल रहा।

इसके बाद स्वाभाविक रूप से यह आंदोलन अपने पर फैलाने लगा। दूसरे महाविद्यालयों के छात्रों ने भी ऐसे कार्यक्रम आयोजित करना स्वीकार किया और इस आंदोलन को 'स्पिक मैके' (सोसायटी फॉर दि प्रमोशन ऑफ इंडियन क्लासिकल म्यूज़िक एंड कल्चर अमंग्सट यूथ) का नया नाम दिया गया। शीघ्र ही अन्य नगरों में यह आन्दोलन सक्रिय हुआ। 1981 में विद्यालय भी इससे संबद्ध हो गये।

यद्यपि हमने शास्त्रीय संगीत से अपनी यात्रा प्रारम्भ की थी किन्तु आने वाले वर्षो में हमारी विरासत से जुड़े हुए दूसरे आयाम जैसे – शास्त्रीय नृत्य, लोक संगीत, योग, हस्तकला, चित्रकला आदि व दर्शनशास्त्रियों, सामाजिक कार्यकर्त्ताओं तथा पर्यावरणविदों की प्रेरणादायक वार्ताएँ, इतिहासकारों के साथ पुरातात्विक महत्व के स्थानों की यात्राएं, रंगमंच, उत्कृष्ट फिल्म् और यहाँ तक कि सात्विक भोजन को भी अपनी गतिविधियों के दायरे में शमिल कर लिया।

शुरू–शुरू में सर्वश्रेष्ठ कलाकारों से न्यूनतम मानदेय पर प्रस्तुति दिलवाना बहुत कठिन था। मुझे खूब स्मरण है उस्ताद बिस्मिल्लाह खान से वह मुलाकात जो फतहपुरी, चाँदनी चौक के क्राउन होटल में हुई थी। मैने उनसे कहा कि उनके सहयोग से हम भारतीय युवा का चेहरा बदल कर रख देगे। पर जब मैंने उन्हें बताया कि हमारे पास उन्हें देने के लिए वस्तुतः पैसे नहीं है तो उन्होंने सहयोग देने से मना कर दिया। मगर मैंने हार नहीं मानी और वे अन्ततः 'स्पिक–मैके' के लिये प्रस्तुतियाँ देने को तैयार हो गये। संभवतः मेरे प्रयासों और ईमानदारी ने ही उन्हें स्पर्श किया होगा।

पं. बिरजू महराज, सुश्री सोनल मानसिंह, पं. जसराज, डागर बंधु, डॉ. टी. एन. कृष्णन, श्री लालगुड़ी जयरामन, पं. हरिप्रसाद चौरसिया, पं. शिवकुमार शर्मा और उस्ताद अमजद अली ख़ान जैसे कलाकार उस प्रारम्भिक समूह का हिस्सा थे जिन्होंने इस आन्दोलन को समर्थन देना स्वीकार किया था। कई अन्य महान कलाकार बाद में हमसे जुड़े और इस आन्दोलन के विकास में सहायता दी।

कलाकारों के समुदाय के इस महान समर्थन के उपरान्त भी पैसों का लगातार प्रबन्ध करना पड़ता था और यह समस्या आज भी बनी हुई है। उद्योग जगत के नायक आज भी प्राथमिक शिक्षा, महिला एवं बाल समस्याओं, एड्स, पेयजल, विकलांगों की समस्या आदि से जुड़ी परियोजनाओं को सहयोग देना बेहतर मानते हैं। श्री अमित जज, श्री अरूण भरत राम, श्री जौहरी लाल, श्रीमति रीता एवं श्री विलास गडकरी उन गिने चुने व्यक्तियों में से हैं जो स्पिक मैके जैसे अविचारणीय प्रयासों को आर्थिक सहयोग और सहारा देने को तैयार हुए।

इसी प्रकार सरकार से भी चन्द लोग जैसे श्री पी. सबानायगम, श्री अनिल बोर्डिया, श्री एम.के. कॉ, श्री एन. गोपालास्वामी, श्री राजीव रतन

शाह, श्री अमिताभ पांडे, डॉ. मनोरंजन तथा श्रीमति मीनाक्षी शर्मा ऐसे थे जिन्होंने लीक से हटकर इस आन्दोलन को समर्थन दिया। विख्यात चित्रकार श्रीमती अन्जोली इला मेनन नियमित रूप से अपने चित्र स्पिक मैके को दान देती रही हैं, जिसकी मदद से लाखों रूपये इकट्ठा किया जा सका। पिछले कुछ वर्षो मे जबसे संसार ने संकुचित होना प्रारम्भ किया, इस आंदोलन ने भी एक तार्किक कदम के रूप में अन्य संस्कृतियों को 'स्पिक मैके' की गतिविधियों में सम्मिलित करने का निर्णय लिया। वर्तमान में भारत में 200 नगरों और विदेश में लगभग 20 नगरों में प्रतिवर्ष सामान्यतः 1500 आयोजन करते हुए स्पिक मैके क्रियाशील है। उद्देश्य आज भी वही है, भारत और विदेश के युवाओं के जीवन में उस समस्त का प्रकटीकरण जो प्रेरणास्पद है, विलक्षण है, अमूर्त है और सर्वाधिक महत्वपूर्ण, आध्यात्मिक है।

इस वर्ष इस आन्दोलन के तीन दशक की पूर्ति को हम एक उत्सव के रूप में मना रहे हैं। हमें एहसास है कि समय आ गया है जब न सिर्फ भौगोलिक रूप से हमे अपना विस्तार करना है वरन युवाओं को एक कदम और सघनता की ओर भी ले जाना है। हमारा एक कर्त्तव्य ये भी है कि युवाओं में संस्कारों का अंतरण हो जिससे हम अपनी संस्कृति के विशेष गुणों का उन्हे परिचय करा सके, विशेष रूप से 5 से 10 वर्ष की आयु के बच्चो में। यह कर्तव्य पहले माता–पिता पूरा करते थे और आज अधिकतम रूप से टेलीविजन पूरा कर रहा है। विद्यालयों व महाविद्यालयों में छुटपुट सव्याख्या–प्रदर्शन या संगीत कार्यक्रम के बजाय बड़ी संख्या में कार्यशालाएं तथा लम्बी विरासत श्रृंखला के आयोजन से इस आन्दोलन के प्रयासों को सफलता मिल सकती है।

इसके साथ ही ग्रीष्मकालीन अवकाशों में हमारी गुरूकुल छात्रवृत्ति योजना है जिसके अंतर्गत सुपात्र छात्र–छात्राओं को विभिन्न क्षेत्रों के महान मनीषियों के पास भेजा जाता है। योजना का प्रयोजन उन्हें सिखाने से कहीं अधिक प्रेरणा देना है। ऐसे लोगों के सान्निध्य में जो हमारी विरासत के प्रहरी हैं। युवा वर्ग कुछ श्रेष्ठ और वैचारिक प्रक्रियाओं को आत्मसात कर सकते हैं, जिन्हें हमारे पूर्वजों द्वारा पीढ़ी दर पीढ़ी प्रसारित किया गया है। यह न केवल उन्हें बाह्य भौतिक जगत से जूझने में सहायक होगा बल्कि कुछ ऊर्जा को अन्तर्वर्ती रूप में केन्द्रित करने और अपनी आंतरिक दुनिया को समृद्ध कर अधिक संतुलित मनुष्य बनने में भी मददगार होगा।

हमने बहुत से दिलों में प्रेरणा–बीज बो तो दिये हैं, अब इन पौधों को सींचने का समय है ताकि भविष्य में ये मज़बूत वृक्षों के रूप में विकसित हो सकें।

नई दिल्ली,
जून 2007

Mk- fdj.k lsB
संस्थापकः चेयरपर्सन
स्पिक मैके

सार तत्व
स्पिक मेक

हमारी शास्त्रीय पारस कलाएँ

भारतीय शास्त्रीय संगीत और नृत्य मंदिरों से उद्‌भूत होकर राज–दरबारों तक पहुँचे, जहाँ ज्ञानी–रसिक श्रोताओं की उपस्थिति में उन्हें प्रस्तुत किया जाता जहां ये श्रोता एक अलग स्तर पर इन प्रदर्शनों से आनन्दित होते थे। इन श्रोताओं को रस परम्परा और उससे संबंधित प्रतीकों तथा पौराणिक कथाओं की विशद जानकारी होती थी। नर्तक इसी कारण कहानी की रूपरेखा से ऊपर उठकर प्रदर्शन कर पाते थे जबकि संगीतज्ञ राग की बनावट और रचना के शब्दों का ऐसा संयोजन करते थे कि वे संगीत के अमूर्त, सूक्ष्म, प्रेरणास्पद और रहस्यमय क्षेत्र में पहुँच जाते थे।

इस प्रक्रिया में वे अपने श्रोताओं और दर्शकों को सूक्ष्म और विस्तृत परिधियों तक अपने साथ ले जाते थे जो प्रस्तोता तथा रसज्ञों की गहन अन्तर्शक्ति पर निर्भर होता था। बच्चों को इन प्रदर्शनों में ले जाया जाता था जिससे वे कालान्तर में इन्हें समझ सकें और इन प्रस्तुतियों की गहराई से प्रभावित हो सकें। प्रत्येक कला स्वरूप को इस प्रकार विकसित किया जाता था कि वह केवल मनोरंजन ही न हो वरन् अपनी सर्वोत्तम परम्परा को नई पीढ़ी तक पहुँचाने के माध्यम का कार्य भी कर सके। स्वतंत्रता के पश्चात् जब राजकीय संरक्षण कला के लिये अवरूद्ध हो गया तब कलाकारों को मंच की ओर आना पड़ा और लोकप्रिय जन समूह की सहायता पर आश्रित होना पड़ा।

समय बदल रहा था – संयुक्त परिवार प्रणाली टूट रही थी और जन मानस के बीच भौतिक सम्पन्नता की बड़ी अभिलाषा थी। अपनी सांसारिक जिम्मेदारियों से जो थोड़ा सा स्वतंत्र समय व्यक्तियों को मिलता था, वे उसमें मनोरंजन चाहते थे। जल्द ही दूरदर्शन, बॉलीवुड, चलचित्र और इंटरनेट ने इन्हें अपने आधिपत्य में ले लिया। इस कारण नई भारतीय पीढ़ी अपनी महान परम्परा के ज्ञान से वंचित रह गई। शास्त्रीय संगीत और नृत्य को स्वीकृति हेतु अधिक शाब्दिक तथा मनोरंजक होना पड़ा। सज्जा और

प्रस्तुतिकरण के तरीकों पर अधिक महत्व दिया जाने लगा। आन्तरिक तत्व की अपेक्षा आवरणों के स्वरूप अधिक महत्वपूर्ण होने लगे। परिणाम यह हुआ कि कार्यक्रम अधिक मनोरंजक और कम औदात्यपूर्ण हो गये। संयोजन के नये प्रयोग जो मूल–स्वरूप में बिना ठोस धरातल के थे – बिना गहराई की प्रस्तुतियों में अधिक योगदान देने लगे। कई प्रकरणों में तकनीक ने अपना वर्चस्व बना लिया जिसने आत्मा को घायल कर दिया। साधन स्वतः ही साध्य हो गये।

अक्सर स्पिक मैके को इस बात का श्रेय जाता है कि हमने आज के युवाओं को 'लेक–डेम' (व्याख्या और प्रस्तुति) के माध्यम से शास्त्रीय कलाओं का, जिसका उन्हें या तो अल्प ज्ञान था या कोई ज्ञान ही नहीं था, व्यापक रुप से परिचय कराया। इन लोगों को मुद्राओं, भावों और रागों की संरचना का अर्थ समझाया। प्रस्तुति का यह नया ढंग कला स्वरूपों को लोकप्रिय बनाने का उपकरण बना। यद्यपि इस प्रक्रिया से प्रदर्शनों की गरिमा में कमी आई – कई कलाकारों का ऐसा विश्वास है कि प्रस्तुतिकरण के समय बात न की जाये और इसकी सांसारिकता के भाग को दूसरों के संपादन के लिये छोड़ दिया जाये। उनके अनुसार बाह्य और आंतरिक स्थितियों में एक साथ नहीं जाया जा सकता–पर कलाकारों की अपनी आंतरिक यात्रा पर जाने और उन्हें अपने साथ श्रोता को भी उस यात्रा पर ले जाने का अवसर देने में 'स्पिक मैके' जैसे संगठनों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है।

यदि हम संगीत–सभा के वातावरण को पूजा–घर के वातावरण में ढाल सकें तो हम अपने ध्येय को पा सकते हैं। एक साफ सुथरा परिवेश, बैठक मुद्रा में आसीन श्रोता, बाहर सिलसिलेवार जमे हुए जूते, चप्पल, मोबाइल फोनों की अनुपस्थिति, प्रस्तुति के समय हलचल और खुसर–पुसर विहीन स्थिति, फ्लैश फोटो का अभाव और तालियों की आवाज़ की रिक्तता–ऐसा वातावरण निर्मित करेगी जहाँ कलाकार और रसिक दोनों, रसास्वादन के उच्चतम शिखर का स्पर्श कर सकेंगे।

आस्था और धीरज

गहन और अमूर्त धारणाएं बहुधा तार्किक व्याख्या के लिये कम अवसर देती हैं। उनकी समझ क्षणिक संवेदनाओं द्वारा ही प्राप्त होती है जिसे समय के साथ विकसित किया जाता है। एक युवा चीनी की कहानी है जिसमें युवक अपने गुरू के पास जेड पत्थर (हरिताश्म) के बारे में जानने के लिये गया। उसके गुरू ने कहा कि उसे पत्थर के बारे में बताया जायेगा बशर्ते वह धैर्यवान हो। युवक इसके लिये सहमत हो गया। प्रत्येक सुबह युवक के हाथों पर एक पत्थर रख दिया जाता और सूर्यास्त तक उसे जीवन के विभिन्न आयामों के विषय में कहानियाँ सुनाई जातीं। इस प्रकार कई वर्ष व्यतीत हो गये। एक दिन जब एक अलग किस्म का पत्थर उसके हाथों पर रखा गया तो उसने मुस्कराकर कहा, ''गुरूदेव यह 'जेड' तो नहीं है।'' ज्ञान के इस बिन्दु तक पहुँचने के लिये उसे ज़बरदस्त विश्वास और धीरज रखना पड़ा।

दूसरा दृष्टांत उस शिष्य का है जो गुरु के पास शास्त्रीय संगीत सीखने के लिये गया। गुरु ने उससे कहा कि उसे दस वर्ष तक केवल 'सा' का अभ्यास करना पड़ेगा तत्पश्चात् वह उसे शिक्षा देना प्रारम्भ करेगा। ये लघु कथाएँ सही शिक्षण बिन्दु खोजने के महत्व की ओर इशारा करती हैं, जहाँ पूर्णरूप से विश्वास सँजोने और अन्त तक धैर्य के साथ डटे रहने की महत्ता समझायी जाती हैं। किसी भी चीज का प्रारम्भ करना सरल है किन्तु उसके उतार–चढ़ावों के साथ अन्त तक निभाना कठिन है। इसलिए जब हमारे लक्ष्य अमूर्त व गहन हों तो कठिनाई बढ़ जाती है, विशेषतः गहन वस्तुओं के परिप्रेक्ष्य में।

अंत में एक लघुकथा और है। एक छोटी सी लड़की शास्त्रीय और लोकप्रिय संगीत के बीच का अन्तर समझा रही थी। वह कह रही थी कि लोकप्रिय संगीत एक फुलझड़ी के समान है जो चमक दमक के साथ जलती है किन्तु कुछ क्षणों बाद बुझ जाती है। दूसरी ओर शास्त्रीय संगीत एक अगरबत्ती के समान है जिसकी सुगंध आप तक पहुँचने में समय तो लेती है

किन्तु वह अगरबत्ती घंटों तक कमरे को सुगन्धित रखती है। कृपया कमरे को तबतक न छोड़ें जब तक सुगन्ध आप तक पहुँच न जाए अन्यथा आप नहीं जान पायेंगे आपने क्या खो दिया है।

कलाकार को पर्चियाँ भेजना

एक संगीत समारोह में श्रोताओं में से किसी ने आवाज लगाकार कलाकार से कहा–राग हंसध्वनि गाने की कृपा करें। संगीत समारोहों में कलाकारों से ऐसे निवेदनों की संख्या बढ़ती जा रही है। ये श्रोता यह नहीं जानते कि शास्त्रीय संगीत निवेदन आधारित व्यवस्था नहीं है। इसका मूल अन्तर इस तथ्य में निहित है कि शास्त्रीय संगीत का स्वभाव समोन्नति है। मनोरंजन इसका एक पक्ष मात्र है किन्तु जब यह प्रमुख हो जाता है तब शास्त्रीय और लोकप्रिय संगीत का अन्तर बहुत ही क्षीण हो जाता है।

एक सच्चे शास्त्रीय संगीतज्ञ को सर्वप्रथम अपने में निहित ऊँचाइयों तक पहुँचना चाहिये–श्रोताओं की रूचि के अनुसार प्रस्तुति देनी पड़ी तो उभयपक्ष का मनोरंजन तो होगा किन्तु कोई भी शास्त्रीयता की गुणात्मकता को प्राप्त नहीं कर पायेगा। स्वर्गीय उस्ताद नासिर अमीनुद्दीन डागर ने एक बार कहा था कि एक सच्चे कलाकार को तानपुरा ही बताता है कि उसे आगे क्या गाना हैं। यह निःसंदेह कटु होगा यदि इस नाजुक संप्रेषण को श्रोता समूह के किसी व्यक्ति द्वारा मौखिक या लिखित निवेदन द्वारा भंग कर दिया जाये। महान कलाकार हमेशा ही एक महान प्रस्तुति देगा लेकिन संगीत सभा के चलित स्तर से ऊपर उठने के लिये उसे श्रोता समूह से भी थोड़ी सहायता की जरूरत होती है। शांत रहना, हिलने–डुलने से बचना तथा कलाकार को पर्चियाँ नहीं भेजना, इस दिशा में बहुत सहायक होता है।

निश्काम कर्म

न्यूटन का तीसरा नियम बतलाता है कि प्रत्येक क्रिया की एक समान और विपरीत प्रतिक्रिया होती है। कहा जाता है कि निष्काम कर्म का भी अपना एक नियम होता है जो कहता है कि प्रत्येक क्रिया जिसमें निहित अपेक्षा न हो, उसकी प्रतिक्रिया–क्रिया की अपेक्षा बहुत अधिक होती है। यह उस स्त्रोत से आती है जो क्रियान्वयन की अपेक्षा अलग होता है। न्यूटन का तीसरा नियम प्रायोगिक रूप से सिद्ध किया जा चुका है जबकि निष्काम कर्म सिद्ध करने के लिये प्रयोग किया जा सकता है। अनुभवों द्वारा वस्तुओं को परखें। यह सच्चाई की पुष्टि का सबसे शक्तिशाली रचनातंत्र है। आप अपने समय और धन का केवल 10 प्रतिशत उस वस्तु पर लगायें जिससे आपको कोई अपेक्षा न हो और एक सुन्दर परिणाम को परिलक्षित होते देखे।

स्वैच्छिक स्फूर्ति

हम जब स्वयं को बिना किसी ठोस लाभ की आकांक्षा से किसी स्वैच्छिक कार्य में संलग्न करते हैं तब हम अमूर्त रूप से लाभान्वित होते हैं। इस बात को हम आज भूल चुके हैं। लेना आगमन है, देना निर्गमन हैं। हम जब ग्रहण करते हैं तो यह उन्हें प्रभावित करता है जिनसे हम प्राप्त कर रहे हैं और उन्हें भी ग्रहण करने के लिये तैयार करते हैं। दूसरी ओर जब हम देते हैं तब फिर दूसरे भी इस बात से प्रभावित होते हैं। लेने और देने की प्रक्रिया बड़ी संक्रामक हो सकती हैं अन्तर केवल इतना है कि जब हम कुछ लेते हैं तब हमारे अवचेतन में एक विशेष तनाव निर्मित होता है जो हमें ग्रहण किये गये का पूर्ण आनन्द उठाने नहीं देता। इसके विपरीत जो व्यक्ति देता है वह स्वयं को समुन्नत कर, लेने वाले के आनन्द में भी भागीदार हो जाता है। इसके साथ ही उसे कुछ अधिक वापिस मिल जाता है जो समय विशेष में उसे अन्य स्रोतों से प्राप्त होता है। यहाँ न्यूटन के तीसरे नियम का अनुसरण होता है – पर कुछ परिवर्तन के साथ।

'कर्म' के नियम का उत्तम उदाहरण है दिल से किया गया स्वैच्छिक कार्य। वे व्यक्ति जो इस प्रकार के कार्य में संलग्न होते हैं, उन्हें कई कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है किन्तु समय के साथ वे ऐसी दीप्ति उत्सर्जित करने लगते हैं जिसे कोई धन नहीं खरीद सकता। महात्मा गांधी का यह विश्वास था कि उनके पास जो भी है – देह, दिमाग और स्फूर्ति – सब समाज के लाभ के लिये एक न्यास सा है और वे हमेशा खुद को उसका न्यासी समझते रहे और कभी भी इसके मालिक होने का अनुभव नहीं किया। यदि हम अपने जीवन में इस आशय के छोटे से हिस्से को भी शामिल कर इसके द्वारा सही स्वैच्छिक स्फूर्ति के सकारात्मक प्रयास में योगदान कर सके तो हम ऐसे आनन्द का अनुभव करेंगे जिसकी संपूर्णता को शब्द भी नहीं बखान सकेंगे।

संप्रति : युगवार

सूचना/जानकारी की धूम

आज सत्यता, संसार व्यापी फलक (World Wide Web - www) में निहित है। एक 'क्लिक' के इशारे पर आपका वफादार 'माउस' आपको अज्ञात किनारों या तटों पर ले जाता है। यह फलक आपको वहाँ ले जा सकता है जहाँ आप हमेशा जाना चाहते थे किन्तु जानते नहीं थे कि कैसे जाएं। अब तो एक मुख्यमंत्री भी संसार के सबसे शक्तिशाली मनुष्य को अपने दरवाजे पर लाकर खड़ा कर सकता है। 'माउस' को हमारा धन्यवाद। ये अलौकिक आविष्कार कुछ ही पलों में सत्य को हमारी अंगुलियों तक ले आते हैं।

वास्तव में इस प्रगति ने हमारे योगियों को भी पीछे छोड़ दिया है जो हमें केवल यह बतलाते थे कि हमारी उँगलि की नोक की अपेक्षा सत्य को विशाल अन्तराल में देखना चाहिये। सत्य अनुभव करने के लिये लोगों का पूरा जीवन लग जाता है पर आज कई योगियों पर इन्टरनेट का इतना अधिक प्रभाव पड़ गया है कि उन्हें परिवर्तन के लिये बाध्य होना पड़ा है। अब हम कम प्रयत्न व अधिक तीव्रता से 'निर्वाण' तक पहुँच सकते हैं तथा इसके लिये एक या दो सप्ताह का पाठ्यक्रम ही यथेष्ट होगा। यह हमें दर्शाता है कि प्रतियोगिता क्या कर सकती है। हर वस्तु और व्यक्ति को चिन्हांकित कर लिया गया है और हम जान गये हैं कि कौन हमें रास्ता दिखला सकता है। इस सुखबोध के वृत्त के बीच कृपया सज्जनतापूर्वक हमारा नेतृत्व करो– मुझे और आगे ले चलो।

लम्बी छलांग/ऊँची उड़ान

आज का युवक दशाब्दियों पूर्व के किसी भी व्यक्ति से ज्यादा जागरुक है। यह डारविन के विकासवादी सिद्धान्त और तकनीकी क्रांति का परिणाम है। सूचना को ज्ञान में परिवर्तित होने में समय लगता है और ज्ञान को बुद्धिमत्ता में रूपांतरित होने में और अधिक समय लगता है। एक बार जब ज्ञान के माध्यम से दिशा स्पष्ट हो जाती है, तब बुद्धिमत्ता को अर्जित करने के लिये कड़े परिश्रम की आवश्यकता होती है। इस प्रक्रिया में धीरज, निश्चित विश्वास और उदार मन जरूरी है जिसका वर्तमान में अभाव है। फलस्वरूप एक बुद्धिशील और परिश्रमी युवक 'सर्वज्ञाता' होने के भुलावे में फँस सकता है। यह प्रगति की संभावनाओं को अवरूद्ध करता है। उस्ताद नसीर अमीनुद्दीन डागर कहते थे, ''हम बच्चे को चालीस साल की उम्र तक मंच पर नहीं आने देते थे, वो कहीं ये भूल न जाये वह किस लिये गा रहा है।''

प्रगति का अर्थ चक्र की पुनः खोज करना नही है किन्तु उपलब्ध चक्र को अपनी प्रवीणता से परिष्कृत करना है। उसे प्राप्त करने के लिये आपके पास विनम्रता, धैर्य और सीखने की इच्छा–शक्ति होनी चाहिये। यह कोई नहीं कहता कि प्रश्न न करो परन्तु यह समझना आवश्यक है कि प्रश्न कब, कैसे और कहाँ किये जायें। गुरु के पास तो खज़ाना होता है जिसे वह आसानी से खर्च नहीं करता। इस खज़ाने को वही शिष्य पा सकता है जिसके पास उपरोक्त विशेषताएँ हों। बस एक बार उसके स्वत्व की थाह मिल जाये तो गुरु योग्य शिष्य को आगे बढ़ने और अपेक्षाकृत गहरे सत्यों को खोजने के लिए स्वयं कहता है किन्तु तब तक शिष्य को जल्दी में छलांग लगाने की कोशिश नहीं करनी चाहिये।

शिखर की लालसा

हम सब अपने जीवन में बहुत बड़े–बड़े काम करने के लिये भाग रहे हैं – बहुधा यह भूलते हुए कि बड़ी वस्तुओं के आधार छोटी वस्तुओं में ही होते हैं। एक विशाल भवन ईट दर ईट ही निर्मित होता है; जितने परिश्रम से यह बनाया जायेगा उतना ही ये मजबूत होगा। आजकल अधिक सुनने में आता है कि, 'मुझे शीघ्र अतिशीघ्र शिखर पर पहुँचना है'', परन्तु सफलता का एक बड़ा हिस्सा हमारे कर्म में निहित होता है। रास्ते अपने हस्तक्षेप से आपको सुदृढ़ करते हैं पर तिनका–तिनका कर अपना घर बनाना, अपने बोये पौधे को अपने सामने विकसित होते देखने का सुख, पराजय और रुकावटों का मुकाबला करना, सब आपको शिखर तक पहुँचाने में योगदान देते हैं। आप अगर बहुत तेज़ी से ऊपर जाते हैं तब ऐसे भी मौके आते हैं जब आप उतनी ही तेज़ी से नीचे आ जाते हैं। इसका अर्थ यह नहीं कि आप अपने प्रयासों को कम करें। एकाग्रता केवल प्रतिक्रिया पर ही होनी चाहिये। कड़ी मेहनत से रखा गया प्रत्येक कदम और संपूर्ण संतुष्टि का आभास ही अंतिम कसौटी होना चाहिये।

एक शास्त्रीय संगीतज्ञ क्रमबद्ध बढ़ते हुऐ नीचे के स्वरों से ऊपर के स्वरों तक पहुँचता है। उस्ताद अमीनुद्दीन डागर कहते थे कि वे प्रत्येक स्वर के चारों ओर तब तक मंडराते रहेंगे जब तक उसका प्रत्यक्ष दर्शन नहीं कर लेते। जब उन्हें स्वर प्राप्त हो जाता है तब वे उस शीर्ष पर होते हैं जहाँ वे दीर्घ 'सा' का स्पर्श करते हैं। वे इसका सौंदर्यपूर्ण वर्णन करते हुए कहेते कि 'नि' जो निरंकार ब्रह्म है से दीर्घ 'सा', जो साकार ब्रह्म है, तक का परिगमन अद्भुत होता है। यह गायक और श्रोता दोनों को स्तंभित कर देता है। यह उसी प्रक्रिया के समान है जहाँ अनेक रास्ते एक ही शीर्ष की ओर जाते हैं।

सतहीपन

आज के संसार में सतहीपन या छिछोरेपन की भरमार है। आंतरिक विकास की अपेक्षा अपने आपको बाहरी दुनिया में स्थापित करना अधिक महत्वपूर्ण हो गया है। इसका परिणाम है, 'व्यक्ति क्या है और उसे क्या होना चाहिए' के बीच एक असंबद्धता। इस व्याकुलता ने हमारी कलाओं को भी प्रभावित किया है। प्रस्तोता और प्रस्तुति के बीच का अंतर लगातार बढ़ रहा है। तकनीकी योग्यता और दिखावे की प्रवृत्ति ने आत्मा की अभिव्यक्ति को दबोच लिया है। आज हमारे लिये यह आवश्यक हो गया है कि हमें सड़क किनारे पड़े हीरे और सलीके से सजे काँच के अंतर को पहचानने की समझ हो।

एक छात्र की कहानी है जो संगतराशी के बारे मे सब कुछ सीखना चाहता था। वह एक गुरु के पास गया जो उसकी हथेली पर एक रत्न रखकर उस रत्न को छोड़कर बाकी सारी कहानियाँ सुनाता था। कुछ वर्ष बीत गये। एक दिन गुरु ने उसके हाथ में एक दूसरा रत्न रख दिया तो वह छात्र चीख पड़ा कि 'यह तो वह रत्न नहीं है जो गुरु रोज़ रखते थे।'

हम सबको अधिक से अधिक संगीत सभाओं में जाना चाहिए और उन्हें बीच में छोड़ कर नहीं आना चाहिये। कुछ ही दिनों में हम असली और नकली के बीच अंतर करना सीख जाएँगे व असली से प्राप्त होने वाले यथेष्ट आनंद को पा सकेंगे। इस प्रकार सतहीपन की ओर के झुकाव को भी हम कम कर पायेंगे।

'चलता है' मनोवृत्ति

इन दिनों 'चलता है' की अवधारणा का प्रयोग बढ़ता जा रहा है। जब से ज़िंदगी की गति तीव्रतर हुई है तब से हमारे पास कोई और विकल्प रह भी नहीं गया है। तथापि इस प्रवृत्ति को रोका नहीं गया तो खतरा है। छोटी–छोटी चीजों के बीच बड़ी चीजें छिपी हुई हैं। हम अपने मार्ग की छोटी वस्तुओं को छोड़कर चाँद को पाना चाहते हैं। वास्तव में यह हो नहीं सकता।

हम पैरों से जूते निकालकर किस प्रकार रखते हैं, संगीत सभा के पोस्टर किस प्रकार चिपकाते हैं–ये यद्यपि छोटी बातें है किंतु महत्वपूर्ण ब्योरे हैं। हमें इन बातों का ध्यान रखना होगा यदि हम ये चाहते हैं कि उस दक्षता का विकास हो जो हमें इस योग्य बनाए कि सूक्ष्म और अमूर्त को जान सके। यह भी कि ये दोनों तत्व किसी भी गहराई को नापने के लिये बहुत आवश्यक हैं।

एक युवा यहूदी की कथा है जो यहूदियों की पवित्र पुस्तक 'तोराह' का अध्ययन करना चाहता था किंतु वह यहूदी पंडितों के नीचे इसका अध्ययन नहीं करना चाहता था। जब उससे यह पूछा गया कि वह गाँव के एक विशेष गुरु के पास ही क्यों जाना चाहता है तो उसका उत्तर था कि वह देखना चाहता है कि वह दकियानूसी गुरु अपने जूते कैसे बाँधता है?

गहन तथ्यों की ग्राह्यता आसान नहीं है। इसके लिये कड़े परिश्रम की जरूरत है और 'चलता है' की मनोवृत्ति इस लक्ष्य प्राप्ति में बाधा बन सकती है। आजकल संगीत सभाओं में तालियाँ तभी बजती हैं जब तबला और अन्य वाद्ययंत्र में मुकाबला होता है। हम यह नहीं जानते कि हमें 'वाह' कब कहना है। यह उसी समय व्यक्त होता है जब किसी स्वर का सूक्ष्म अंश सही स्थान पर प्रयुक्त होता है। कोई भी आम व्यक्ति इसको नहीं पकड़ सकता।

सीखने की प्रक्रिया

मूल रूप से आज की शिक्षा प्रणाली हमें केवल सूचनाएँ प्रदान करती है। इसे आदर्श रूप में ज्ञान और बुद्धिमत्ता प्रदान करना चाहिये किंतु ऐसा हो नहीं पाता क्योंकि इनके हस्तांतरण के लिये अपेक्षित परिस्थितियाँ बन नहीं पाती। एक आम कक्षा की परिस्थिति में कोई महान व्यक्ति या गुरु अपने ज्ञान का एक अंश मात्र ही दे पाता है।

ऐसे कई तत्व हैं जो ज्ञान के प्रभावी हस्तांतरण के अवसरों में वृद्धि कर सकते हैं। शिष्य में गुरु से बुद्धि कौशल और ज्ञान प्राप्त करने की तीव्र इच्छा होनी चाहिये। उसके पास इन्हें पाने की क्षमता भी होनी चाहिये। दूसरे शब्दों में वह इसका सुयोग्य पात्र होना चाहिये। यह स्मरण रखना चाहिये कि गुरू के पास भले ही खजाने की कोठरी हो पर उसकी चाबी शिष्य के पास ही है। इस बात की अनुभूति भी होनी चाहिये कि यदि कोठरी का खोलना संभव हुआ तो ऐसा समय के बेतरतीब क्षणों में ही होगा अतः शिष्य को इन क्षणों को लपकने के लिए सदैव सतर्क रहना होगा जो कभी भी गुरु के मुख से निकल सकते हैं। यदि शिष्य कोठरी खोलना चाहता है तो उसे पूर्ण रूप से अपने अहम् को भी दबाना होगा।

क्या इसका अर्थ यह है कि शिष्य को धीरे–धीरे अपने गुरु की प्रतिकृति बनना होगा? नहीं। यदि वह वो सब कुछ सीख जाता है जो गुरु उसे कुछ वर्षो में सिखाना चाहते हैं (जो स्वयं गुरु की जीवनभर की उपलब्धि है) तब वह स्वयं अपने तरीके से स्वयं को विकसित कर अपने को प्रस्तुत कर सकता है। एक सच्चा गुरू अपने शिष्यों को बता सकता है कि किस समय उसे आगे बढ़ना है। ज्ञानार्जन की यह क्रिया समस्त विषयों के लिये प्रासंगिक है बशर्ते कोई उसमें गहराई तक उतरना चाहता हो।

आज और भारत

भारतीय दक्षता का मर्म

भारत की मुख्य दक्षता का मर्म उसके आंतरिक ज्ञान में निहित है। विज्ञान, प्रौद्योगिकी, खेलकूद और अन्य बहिर्मुखी क्षेत्रों में मुख्यतः पश्चिमी देशों की पकड़ अधिक है। हम इन क्षेत्रों में अपना वर्चस्व बढ़ाने के लिये लंबी छलांगे तो लगा रहे हैं पर हमारे पूर्वजों द्वारा शताब्दियों की साधना के पश्चात सौंपी गई विरासत की अवहेलना करना भी बुद्धिमत्ता नहीं होगी। आज शासन, संचार माध्यम, उद्योग जगत, अभिभावक, शिक्षक समुदाय, विद्यार्थी समूह और जनमानस सामान्यतः इंजीनियरिंग, मेडीसिन, व्यापार–प्रशासन और सघन संचार साधन को अधिक महत्व दे रहे हैं। इसके विपरीत हमारे दर्शन, भाषाओं, शास्त्रीय और लोक कलाओं, शिल्प और रंगकर्म को बहुत कम महत्व दिया जाता है। परिणाम स्वरूप समाज की विलक्षण, अमूर्त, प्रेरणास्पद और रहस्यवादी शक्तियों को पहचानने और मान्यता प्रदान करने की योग्यता प्रतिदिन कम होती जा रही है।

एक ओर अनेक श्रेष्ठ विद्यालय और महाविद्यालय अत्यन्त साधारण सांस्कृतिक कार्यक्रमों का आयोजन कर धन और परिश्रम का अपव्यय करते हैं पर हमारे महान गुरुओं की तुलना में अपेक्षाकृत कम लोकप्रिय शास्त्रीय या लोक संगीत या नृत्य के कार्यक्रमों को आंशिक समर्थन देने में भी इन्हें कठिनाई होती है। कई विशिष्ट विद्यालय अपने छात्रों को विदेशी भाषाएं सीखने का विकल्प भी देते हैं किन्तु अपनी मातृभाषा सीखने की कोई प्रेरणा या विकल्प नहीं देते। अतिशय या विशाल आयोजनों जैसी उक्तियों का कई प्रस्तुतियों के साथ प्रयोग किया जाता है जो प्रायः बॉलीवुड–ढंग की लोकप्रियता की प्रवृति से मंडित होती हैं।

संस्कृति को आज केवल एक विपणन वस्तु के रूप में ही देखा जा रहा है। उसे एक व्यक्ति के उत्थान के माध्यम के रुप में नही देखा जाता जिसके लिये उसे विशेषतः बनाया गया है। हमारी संस्कृति से जुड़े बेहतर गुणवत्ता के कार्यक्रमों को भी मीडिया में स्थान पाने के लिये प्रतिस्पर्धा

करनी पड़ती है। यहाँ तक कि इन कार्यक्रमों को प्रमुख समाचारपत्रों के दैनिक घटनाओं के कॉलमों में भी स्थान नही मिलता जबकि बड़े–बड़े निगम अपनी उपलब्धियों के प्रचार पर करोड़ों रुपया खर्च कर देते हैं।

हालात ये हैं कि हमारे महान संगीतज्ञों व नर्तकों को आज अपने कार्यक्रमों की प्रस्तुती का स्तर गिराना पड़ रहा है या फिर इस बाज़ार से संचालित दुनिया में दरकिनार रह कर ही संतोष कर लेना पड़ता है। हर वर्ष सरकार पद्म पुरस्कारो की घोषणा करती है जहाँ कला, नृत्य, संगीत सब को एक ही श्रेणी में रख दिया जाता है–कला। अब यदि कोई व्यक्ति यह नही जानता कि पं॰ रामनारायण हमारे देश के सबसे विख्यात सारंगी वादक हैं तो इन्हें कोई पद्म पुरस्कार मिलने पर उस व्यक्ति को तो यही लगेगा कि वह शायद कोई चित्रकार होगा। कुछ अपवादों को छोड़कर हमारी संस्कृति व कला के क्षेत्र में पुरस्कारो के लिये चुने गये लोग प्रायः ऐसे होते हैं जो संभवतः उनके लायक नही होते। इस स्थिति में युवा अभिलाषी संगीतज्ञ और नृत्यकारों को भी गलत संकेत जाते हैं जब महान गुरुओं जैसे उस्ताद फहीमुद्दीन डागर, गुरुकला मंडलम गोपी, उस्ताद असदअली खान, श्रीमती मालिनी राजुरकर, पंडित यशवन्त बुआ जोशी। उस्ताद फहीमुद्दीन डागर जैसे अनेक लोग जिन्होंने अपनी सर्वोत्तम ध ारोहर को बचाए रखने में अपना पूरा जीवन लगा दिया, उनकी अवहेलना की जाती है। इससे क्या पता चलता है? नार्वे सरकार पूरे देश में अपनी कला को विद्यालयों तक विस्तार देने में प्रतिवर्ष लगभग अस्सी करोड़ रूपये खर्च करती है। नार्वे की 45 लाख जनसंख्या दिल्ली की जनसंख्या से आध ी है। नार्वे के 93 प्रतिशत से अधिक बच्चों का ग्रेजुएट होने से पहले इस महत्वपूर्ण धरोहर से परिचय कराया जाता है। भारत में तीस वर्षीय अखिल भारतीय स्पिक मैके आन्दोलन जैसे प्रयास को केन्द्रीय या प्रान्तीय सरकारों से कुछ लाख रूपये प्राप्त करने के लिये भी संघर्ष करना पड़ता है।

आज केन्द्रीय पर्यटन और संस्कृति मंत्री के लिये सांस्कृतिक पर्यटन की प्रोन्नति, संस्कृति से ज्यादा प्राथमिक है। वित्त मंत्री और अन्य मंत्रियों की पसंद में बड़ी सतर्कता बरती जाती है किन्तु वही सतर्कता संस्कृति के प्रकरण में नहीं मिलती। संस्कृति मंत्रालय का केन्द्रीय बजट में भी हिस्सा बहुत छोटा होता है। 2004–05 में यह केन्द्रीय बजट का कुल 0.13 प्रतिशत ही था। इस उपेक्षा के कारण समाज में आंतरिक वृद्धि बहुत कम है जिसके कारण मानवीय चेतना में सफल अवनति हो रही है। यह आश्चर्यजनक है

कि जन साधारण ही नहीं किन्तु अभिजात वर्गों ने भी 1984 में दिल्ली और 2002 में गुजरात में हुई घटनाओं को न्यायोचित माना था। यह देश में बढ़ती जा रही निर्लज्जता की ओर संकेत है। तुच्छ राजनीति और संकीर्ण धर्मान्धता ने सच्ची आध्यात्मिकता को दबोच कर रख लिया है। आंतरिकता की समझ जो हमारी विशालशक्ति थी अब निरन्तर कम हो रही है क्योंकि कुशाग्र छात्र भी बाहर के भविष्य को पसन्द करते हैं जहाँ उनकी दक्षताओं का छोटा सा अंश ही उपयोगी हो पाता है। कुशाग्र बुद्धि मुक्त लोग जिन्हें अपनी परंपराओं या धरोहर को समझना था वे भी बाहर जाकर साबुन बेचने की नीति बना रहे हैं या साधारण कंप्यूटर कार्यक्रम के विकास में व्यस्त हैं– क्योंकि वहाँ के औसत दर्जे के लोग आर्थिक दृष्टि से संपन्न देशों में ज्यादा वेतन की माँग करते हैं। बहुत अधिक मेहनत कर सुविधाएँ प्राप्त करके तनाव रहित होना ज्यादा आकर्षक है बनिस्बत इसके कि अपने जीवन के आंतरिक क्षेत्र में निरंतर कार्य करते रहना और तनावहीन होने का अनुभव करना।

ऐसे बहुत सारे लोग होंगे जो हमारे दर्शन की गंभीरता को समझते हों जैसे आइंस्टीन का सापेक्षवादी सिद्धान्त किन्तु जिस प्रकार हम भौतिकशास्त्र के अध्ययन को प्रोत्साहन देते हैं जिससे एक आइंस्टीन पैदा हो सकता है उसी प्रकार हमें अपनी परम्परा का भी समर्थन करना चाहिये जो गंभीर ज्ञान के व्यक्तियों का निर्माण कर सके। आज के शहरी परिदृश्य में जहाँ माता–पिता दोनों अर्जन में व्यस्त हों, वहाँ परिवार का स्वरूप एक युवक के अंदर अर्थपूर्ण भावना नहीं भर सकता। यह उत्तरदायित्व शिक्षा पर आ जाता है – विशेषतः विद्यालयकालीन शिक्षा पर। यदि शिक्षक, छात्र और पालक – सरकार, निगमों, संस्थाओं, संचार माध्यमों और समाज के संबंद्ध सदस्यों के साथ गुरुतर प्रयास करें तो धीरे–धीरे ही सही किन्तु निश्चितता से लोग इसका अनुभव करेंगे कि भारत की मुख्य दक्षता अपने लोगो का ही नही पर पूरे विश्व के लोगो का जीवन समृद्ध करने में कितना बड़ा योगदान दे सकती है।

पुरस्कार

प्रायः प्रत्येक व्यक्ति पुरस्कारों के पीछे भाग रहा है और उनसब लोगों से संपर्क कर रहा है जो सत्ता के गलियारों में कुछ न कुछ दखल रखते हैं जिससे कि वह किसी न किसी पुरस्कार के लिये नामांकित हो सके। यह दुखद स्थिति है कि अपने–अपने क्षेत्र के सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति इस हेतु प्रचाररत हैं। इससे भी अधिक दुखद यह देखना है कि कई महान व्यक्तित्व जो किसी प्रकार का प्रचार नहीं करते पुरस्कारों के योग्य नहीं माने जाते। लोग भूल गये हैं कि पुरस्कार महान व्यक्तियों को सम्मानित नहीं करते वरन् महान व्यक्तियों से पुरस्कार समाद्रित होते हैं। नोबेल पुरस्कारों ने आज सर्वोच्च ऊँचाई को छुआ है क्योंकि उसने सम्माननीय व्यक्तियों को इससे नवाजा है। आजकल मनुष्यों में बढ़ती हुई आत्म केन्द्रीयता के कारण क्या यह बुद्धिमतापूर्ण है कि किसी व्यक्ति विशेष को पुरस्कारों से लगातार सम्मानित किया जाय? जहाँ तक संभव हो क्या यह अच्छा विचार नहीं होगा कि ये पुरस्कार सामूहिक रूप से प्रदान किये जायें–जैसा कि अभी 'लिज्जत पापड़' और 'रामकृष्ण मिशन' के प्रकरणों में हुआ है? व्यक्ति आधारित पुरस्कारों से केवल अहम् पुष्ट होता है जो महान से भी महान व्यक्ति को प्रभावित कर सकता है। हमारे बीच के एक सर्वोत्तम कलाकार का पदम् पुरस्कार मिलने के बाद बातचीत का लहजा और व्यवहार ही बदल गया। यदि यह एक महान व्यक्ति के साथ यह हो सकता है तो एक कमतर व्यक्ति की क्या नियति होगी?

हमारे संकट ग्रस्त कला प्रारूप

हमारे समस्त कला प्रारूप मूल रूप से ध्यान–योग की विधियाँ हैं। अतएव उस्ताद नासिर अमीनुद्दीन डागर (महान ध्रुपद गायक), स्व. श्रीमती गंगा देवी (महानतम मधुबनी चित्रकार), और गुरु अम्मानुर माधव चाक्यार (महान कुडियट्टम कलाकार) आदि सभी के लक्ष्यों में एकरूपता है। हमारे पूर्वजों ने अनेक रास्ते निर्मित किये हैं और प्रत्येक ने इन्हें संपूर्णता प्रदान करने में शताब्दियाँ व्यतीत की है। कुडियट्टम जो केरल का प्राचीनतम संस्कृत नाट्यरूप है, पर्याप्त संरक्षण के अभाव में विलुप्त होता जा रहा है। इसका तात्पर्य है कि एक अद्वितीय रास्ता समाप्त हो जायेगा जिसका अर्थ होगा देश और विश्व का अपेक्षाकृत गरीब होना और आनेवाली पीढ़ियों के लिए एक सुअवसर का गुम हो जाना। ऐसे अनेक रास्ते समाप्ति की कगार पर हैं। यह हमारे लिये बैठकर विमर्श करने का समय है। जापान में जब कला के तीन अंग–नोह, कुबुकी और बुमराकू उपेक्षा की विकट स्थिति में थे तब इनके लिये तीन राष्ट्रीय रंगमंच बनाए गये किन्तु जहां एक मुख्य वन का संरक्षण तो हुआ, इसके भूमिगत छोटे वन का बहुत बड़ा हिस्सा हमेशा के लिये मिट गया। काश! भारत में ऐसा न हो।

असन्तुलन

एक समाचार पत्र की रपट में बतलाया गया कि फार्मूला–वन–कार के किसी चालक के समर्थन में 19 करोड़ रूपये एकत्रित किये गये। दूसरी ओर कुडियट्टम जो मानवता की मौखिक–परम्परा की श्रेष्ठतम कृति है–जिसकी घोषणा न केवल भारतीय शासन ने वरन् यूनेस्को ने भी की है–वह आज भी सहायता के अभाव में काँपते पैरों पर खड़ी है। मीडिया सानिया मिर्जा के टेनिस प्रतियोगिता का केवल पहला राउन्ड जीतने पर ही शीर्ष स्थान का प्रचार दे देता है, जबकि उस्ताद बिसमिल्लाह खान की प्रस्तुति को थोड़ा सा भी स्थान मिलना कठिन है। इस असंतुलन का परिणाम है उस योगदान का पूर्ण अवमूल्यन जिसे यह देश दुनिया को प्रदत्त कर सकता है। हम इस तथ्य से परिचित है कि संसार सिकुड़ गया है। इसके परिणामस्वरुप समस्त संस्कृतियों के सम्मिश्रण का एक पात्र बन गया है जिसमें प्रत्येक देश अपना योगदान दे रहा है।

एक प्रसिद्ध दर्शन शास्त्री के अनुसार भारतवासी इस पात्र के पास खाली हाथ जा रहे है। इसलिए नहीं कि उनके पास देने को कुछ नहीं है किन्तु इसलिये कि वे जानते ही नहीं उनके पास क्या है? यह उस असंतुलन का ही परिणाम है जिसकी ओर इशारा किया जा चुका है। जब कम्प्यूटर्स पहली बार अस्तित्व में आये तो वे भारी भरकम और सीमित कार्य प्रणाली के थे। डॉयेड्स और ट्रॉयड्स ने ट्रांजिस्टर्स का मार्ग प्रशस्त किया जिससे एकीकृत–परिधियों का विकास हुआ जिन्होंने इन उपयोगी मशीनों के आकार को छोटा किया और उनकी कम्प्यूटिंग (गणक) शक्ति में अभिवृद्धि की। यह बहुत दुर्भाग्यपूर्ण होगा यदि शोध और विकास की संपूर्ण प्रक्रिया जो हमें इस अवस्था तक लाई हैं वह यकायक गुम हो जाए।

इसी प्रकार हमारे पूर्वजों ने 'आंतरिक परिक्षेत्र' में भी अपने देह को एक प्रयोगशाला मान कई शताब्दियों तक सघन शोध संचालित किया है। इस अस्पृश्य भूमि पर वे कल भी उपयोगी थे और मानवता के लिये आज शी उपयोगी हैं। यह दुखद होगा यदि हमारी उपेक्षा से इनमें से कुछ भी

विलुप्त हो जाये। आगे बढ़ते हुए शेष संसार के अनेक क्षेत्रों की बराबरी पर आते हुए, हमें यह नहीं भूलना चाहिये कि हमारे पूर्वजों ने हमें कितना अमूल्य खजाना सौंपा है जिससे न केवल हम वरन् सकल विश्व लाभान्वित हो सकता है।

राजनीतिज्ञ

हममें से अधिकांश के लिये राजनीति और राजनीतिज्ञों की एक विशेष दूरी होती है। इसका सीधा परिणाम यह हुआ कि भ्रष्ट, आपराधिक, संप्रदायवादी और जातिवादी तत्वों ने हमारे समाज के राजनीतिक विचार क्षेत्र को धर दबोचा है। समाज का एक बहुसंख्यक वर्ग राजनीति में प्रविष्ट होने से ही सिर्फ दूर नहीं रहता है, बल्कि अपने मताधिकार का प्रयोग न करके अपने आप को चुनाव प्रक्रिया से भी दूर कर लेता है। जब किसी भी चुनाव में 50 प्रतिशत से अधिक मतदान होता है तो मान लिया जाता है कि भारी मतदान हुआ है। क्या यह आश्चर्यजनक नहीं है?

अनेक मतदाता केवल इसलिये मतदान करते हैं कि वे किसी न किसी जाति या संप्रदाय विशेष के होते हैं और जिसे वे वोट देते हैं उस व्यक्ति से प्रत्यक्ष या परोक्ष लाभ लेना चाहते हैं। इस प्रकार नकारात्मक तत्व हावी हो जाते हैं और सच्ची दक्षता बहिष्कृत हो जाती है।

हमें प्रत्येक चुनाव में अपना मत देना चाहिये। इतना ही नहीं हममें से जो कुछ दिलचस्पी रखते हैं उन्हें चुनाव में प्रत्याशी भी बनना चाहिये। नकारात्मक व्यवस्थाओं में डूब जाने का प्रतिरोध करते हुए अपने आपको समानान्तर रूप से मानसिक, आत्मिक और भौतिक दृष्टिकोण से शक्तिशाली करना चाहिये। हम हमेशा व्यवस्था की शिकायत करते हैं किन्तु उसे दुरूस्त करने के लिये स्वयं कुछ नहीं करते।

हमें कर्मठ होना चाहिये। हमें यह विस्मृत नहीं करना चाहिये कि एक समय था जब हमारे पास महात्मा गाँधी, जवाहरलाल नेहरू जैसे लोग थे जो देश का नेतृत्व करते थे और राजनीति के क्षेत्र में आदर्शवाद का ऊँचा स्थान था। हमें परिवर्तन के लिये हाथों में हाथ देने पड़ेंगे – चाहे प्रारम्भ के लिये यह परिवर्तन छोटा ही हो। यदि योग्य व्यक्ति चुनावी प्रक्रिया से जुड़ते हैं तो बहुत सी चीज़ें स्वतः सुधर जाएँगी।

असहनशीलता

एक मनुष्य द्वारा दूसरे की केवल इसलिये हत्या कर देना कि वह किसी अन्य आस्था का अनुयायी है, उस खालीपन का संकेत है जो एक हिंसक के भीतर होता है। हम सब जानते हैं कि कोई भी धर्म इस कृत्य को न्यायपूर्ण नहीं मानेगा। फिर यह क्यों होता है? जब हम स्वयं अपूर्ण हैं तब हम बहाने के लिये बाहर क्यों देखते हैं? यदि हम बारीकी से जाँच करें तो दूसरों के प्रति गुस्सा वस्तुतः हमारी ही अपर्याप्तता के प्रति गुस्सा है।

यदि हम स्थिर एवं शांत स्वभाव के हैं तो हमारे अंदर नकारात्मक विचार और कृत्य पनपेंगे ही नहीं। हम इस स्थिति तक कैसे पहुँचे? यह ध्यान योग के अभ्यास द्वारा संभव है। आंतरिक रुप से मन नियंत्रण में आता है तथा सूक्ष्म स्तर पर हम शांति और तनाव मुक्ति का अनुभव करते हैं। जब शरीर व्यायाम नहीं करता तो वह कमजोर और अस्वस्थ हो जाता है। इसी प्रकार यदि मन और आत्मा की लगातार देखरेख न हो तो वे क्षयग्रस्त होते हैं और उनके भीतर जंग लग जाता है।

अपने तमाम दबावों के साथ आधुनिक जिन्दगी हमें केवल इतना समय देती है कि हम टेलीविजन देख सकें और वह भी सिर्फ मनोरंजक श्रेणी का। परिणामतः हमारे पूर्वजों द्वारा विकसित विधियाँ जो हमारी आत्मा को परिष्कृत करने की क्षमता रखती हैं हम तक पहुँच ही नही पाती। व्यक्तिगत स्वभाव को प्रभावित करने वाली ध्यान की अलग–अलग तकनीक या तो समाप्त हो गई हैं या समाप्त होने के कगार पर हैं। मज़े की बात यह है कि हम जो खो रहे हैं उसका हम महत्व भी नही जानते।

अपने साथियों के प्रति असंवेदनशीलता के बढ़ते हुए स्तर को गुजरात की ताज़ा घटनाओं ने परिलक्षित किया जहाँ अहमदाबाद में सम्पन्न व्यक्ति भी दुकानें लूट रहे थे जबकि उनके भाई कत्ल किये जा रहे थे। यह मानते हुए कि यह अशांत समय है और शांति की आवश्यकता है, कृपया प्रत्येक सुबह कुछ समय अपने मन पसन्द आदर्श पर ध्यान केंद्रित करें। आप पायेंगे

कि धीरे–धीरे आप उसी आदर्श के समान होते जा रहे हैं। यदि हर व्यक्ति ऐसा कर सकेगा तो गुजरात सरीखी दूसरी त्रासदी के अवसर बहुत हद तक समाप्त हो जायेंगे।

दिशा बोध – २०२०

यह भविष्यवाणी की जा रही है कि सन् 2020 तक भारत एक महान शक्ति बन जायेगा। सरकार और जनता द्वारा ऐसे सारे प्रयास किये जा रहे हैं जिससे हम आर्थिक, तकनीकी, वैज्ञानिक रुप से और हर उस प्रकार से जो हम सोच सकते हैं शिखर तक पहुंच जाऐं। इस ठोस परिप्रेक्ष्य में हम संभवतः यह शिखर अगले 13 वर्षो में प्राप्त कर भी लेंगे किन्तु जिस प्रकार से हमारी प्रगति हो रही है उससे भारत शायद भारत नहीं रह पायेगा। शीर्ष पर पहुँचने की भागमभाग में वह सर्वोच्च प्रायोगिकता जो हमारे पूर्वजों ने हमें सौंपी थी शायद विलुप्त हो जाये या इस प्रकार परिवर्तित हो जाये कि उसकी बाहरी दिखावट को बचाने में उसकी आत्मा ही खो जाये।

श्रीमती किशोरी अमोनकर का कहना है कि जब हमारे वृद्ध संगीतज्ञगुज़र जाऐंगे तो शास्त्रीय संगीत को सही प्रकार से गानेवाला कोई बचेगा ही नहीं। कुट्टिअट्टम जो संसार की प्राचीनतम कलाओं में से एक है और जिसे यूनेस्को ने 'मौखिक और अतिसूक्ष्म मानवीय विरासत की श्रेष्ठ कृति' माना है केवल कुछ कलाकारों के साथ विलुप्तता की कगार पर है। इससे भी कम वे लोग हैं जिन्होंने इसकी उच्च परिष्कृत तकनीक, जो इस विधा में विकसित हुई है, के दार्शनिक महत्व को जाना है। संगीत की समूची परम्परा 'रूद्रवीणा' को बजाने वाले देश में केवल दो लोग बचे हैं और ध्रुपद गायक उत्तरोत्तर बाज़ारवादी हो रहे हैं व अपना अस्तित्व बनाए रखने के लिये अपनी शैली में परिवर्तन कर रहे है।

आज हिन्दुस्तानी और कर्नाटक दोनों शैलियों के शास्त्रीय गायक जिस प्रकार इस परिवर्तित परिवेश में अपने संगीत कार्यक्रम मंचित कर रहे हैं, उससे यह प्रस्तुतियाँ उत्कर्ष की अपेक्षा अधिक आनंददायी और मनोरंजक होती जा रही हैं। संगीत और नृत्य में आध्यात्मिक तत्वों को बनाए रखने के प्रयास सतही होते जा रहे है और ठीक उन उपदेशों की तरह हैं जो आज के आधुनिक गुरु हमें देते हैं, जिनके प्रवचन निम्न वर्गो के लोग भी

आसानी से समझ जाते हैं और जो उन्हे स्वतंत्रता का अनुभव कराने की अपेक्षा अपना दास बना लेते हैं।

हमारे महानतम ऋषियों, मुनियों और सूफी संतों ने औरों को अनुसरण करने के विस्तृत रास्ते दिखलायें हैं और अपने स्वयं के रास्तों का निर्माण करने के लिये हमेशा प्रोत्साहित किया है। आज किसी गुरु की महानता परिभाषित इस बात से होती है कि उसके बतलाए हुए रास्ते पर कितने लोग चल रहे है। हमारे पूर्वजों ने हमें एक दर्शनशास्त्र सौंपा है जो विलक्षण, प्रोत्साहन पूर्ण, अमूर्त और रहस्यवादी है। ज्ञान और अनुभव प्राप्ति का कोई छोटा रास्ता नहीं होता। आज ऐसे कई सरल मार्ग प्रतिपादित किये जा रहे हैं परन्तु उनके लाभ तात्कालिक और अल्पकालिक ही हैं।

जिस प्रकार भारत आज सूचना प्रौद्योगिकी को महत्व दे रहा है उससे हम इस क्षेत्र की धुरी बनते जा रहे हैं। शताब्दियों की प्रयोगधर्मिता ने हमें एक प्राचीन पांडित्य सौंपा है। हमें उसे अधिक नहीं तो बराबरी का महत्व तो अवश्य देना चाहिये। इस प्रकार हम संसार को आतंरिक विकास के आयाम का अंशदान दे सकेंगे जो या तो विलीन होते जा रहे हैं या बाजारवादी ताकतों के अनुरूप ढलते जा रहे हैं और इस प्रकार अपनी प्रासंगिकता भी खोते जा रहे हैं। विषाल राजमार्ग, महानगर, विश्वस्तरीय विमान तल, बहुमंजिले भवन, छायादार विशाल बाजार – सब का स्वागत है किंतु महान धरोहर की कीमत पर नहीं।

ग्रीक, रोमन, और एजटिक जैसी सभ्यताएँ अब केवल अजायबघरों में ही उपलब्ध हैं। जापान ने औद्योगीकरण की पागल दौड़ के पश्चात् यकायक तीन महान कलाओं, नोह, कबुकी और बुनराकू की क्षति का अनुभव किया और उनके पुनरूत्थान के लिये राष्ट्रीय अकादमियों की स्थापना की। किन्तु मरम्मत किए गए मकान या पुनःरोपित वन पहले जैसे नहीं होते। प्राणिमात्र और उससे संबंधित विकास के निर्माण में शताब्दियाँ लग जाती हैं। यह गलती हमें नहीं करनी चाहिये।

जीवन से होकर
या जीवन यायावर

अभिलाषा

व्यक्ति जितनी अधिक इच्छाएँ करता है उतनी ही इच्छाएँ और जन्म लेती हैं। जैसे ही एक सांसारिक इच्छा पूर्ण होती है वैसे ही एक अन्य इच्छा उसका स्थान ले लेती है। यदि ऐसा नहीं होता तो व्यक्ति को असंतोष का अनुभव होता है और उस इच्छापूर्ति की प्रबलता और तीव्र हो जाती है। यह चक्र अनंतानंत बढ़ता ही जाता है।

कहते है कि हमारी जितनी इच्छाएँ पूर्ण होती हैं उसी से हमारे सुख का पैमाना बनता है क्योंकि कोई भी इस बारे में आश्वस्त नहीं हो सकता कि वह क्या चाहता है। तो समझदारी इसी में है कि हम अपनी इच्छाओं को नियंत्रित करने की चेष्टा करें। हमारी इच्छाओं की संख्या कम होगी तभी हमारे सुख की सूची बढ़ेगी। स्वामी रामकृष्ण की केवल एक अभिलाषा थी और वह पूरी हुई, उसका परिणाम था उच्चतम संभावित सुख।

आध्यात्मिक क्षेत्र में सांसारिकता की अपेक्षा आकांक्षाओं की संख्या सामान्य तौर पर काफी कम होती है और आध्यात्मिकता, सांसारिकता पर सदा नियंत्रक प्रभाव डालती हैं। जैसे ही कोई अन्तरतम की ओर जाता है, बाह्य परिवेश उत्तरोत्तर कम महत्वपूर्ण हो जाता है तथा एक स्थायी आनन्द की अनुभूति होती है। उदाहरण के लिये हममें से अनेक कंप्यूटर के विकास में संलग्न नहीं थे किन्तु हम उसके उपयोग को लाभदायक तो मानते हैं। हमारे लिये अपनी इच्छाओं को कम करने का एक अच्छा कारण संभवतः उनका जीवन यापन है।

हमारा अहं

हमारा अहं दोधारी तलवार बन सकता है। 'मैं कर सकता हूँ' का भाव कड़ी मेहनत के लिये प्रेरित करता है किंतु 'मैंने यह किया है और इसके लिये मुझे पुरस्कृत किया जाना चाहिये' का विचार व्यक्ति को नीचे की ओर ले जाता है। ध्यान योग के निरंतर अभ्यास से हमारे अहं के इस नकारात्मक पक्ष को नियंत्रित किया जा सकता है। सत्ता, प्रसिद्धि और पैसा उन प्रयासों का स्वाभाविक नतीजा है जो एक व्यक्ति किसी साहसिक कार्य के लिये करता है किन्तु यह वैसा ही है जैसे वनों की सुन्दरता और सघनता की अपेक्षा तात्कालिक लाभ के लिये कुछ वृक्षों को काट डालना।

सत्ता, कीर्ति और धन का स्वभाव अति लोभी जैसा होता है। जितना अधिक आपको प्राप्त होता है उतना ही अधिक आप और पाना चाहते हैं। अपर्याप्तता का असंतोष या जो है उसे बचाये रखने के लिये भ्रामक साधनों का प्रयोग मनुष्य को तनाव और दुख की स्थिति में रखता है। इसके विपरीत यदि संपूर्ण प्रयास बिना किसी अपेक्षा के किया गया अर्पण है तो व्यक्ति के आंतरिक विकास में अभिवृद्धि होती है जो खुशहाली की उच्च अवस्था तक ले जाती है।

यह सब करने की अपेक्षा कहने में सरल है। सत्ता, कीर्ति और धन का परित्याग कर पाना बहुत कठिन होता है क्योंकि अमूर्त और अतिसूक्ष्म लाभ की अपेक्षा उसके दृष्टव्य फायदे अनेक है। किन्तु प्रतिदिन ध्यान के अभ्यास के द्वारा कोई भी सत्ता, कीर्ति और धन के पीछे भागने की निरर्थकता को अनुभव कर सकता है। हमारे प्रयास परिणामों के लिए रुकने नहीं चाहिये। हमें भीतर झाँकना होगा और यदि हम भीतर देखने योग्य हो सकें तो हमें बाहर देखने की जरूरत नहीं होगी।

विपक्ष

जब कभी भी कोई अच्छा कार्य किया जाता है तब सदैव ही उसका विरोध होता है। किसी व्यक्ति या वस्तु पर राह में रोड़े अटकाने या अच्छे प्रयासों को सफल होने से रोकने का दोष लगाने का कोई लाभ नही। यदि इन व्यक्तियों या वस्तुओं को किसी प्रकार दूर कर भी दिया जाये तो कोई दूसरा इसी नकारात्मक प्रभाव के साथ वापस आ जायेगा। अतएव उस व्यक्ति के लिये जो अच्छा कार्य कर रहा है, यह आवश्यक है कि वह निःस्वार्थ

मन और निष्कपट शव से अपना काम करे व इन नकारात्मक शक्तियों से प्रभावित न हो जो कई रूपों में प्रगट हो जाती हैं। आलोचना से नहीं वरन् दृढ़ उद्यम से ही किये गये कार्य और वैयक्तिक विकास में सुन्दर परिण ाम मिलेगा। याद रखो कि विरोध तुम्हारे धैर्य और कृतित्व की धारणा को परखने के लिये ही होता है। यदि तुम इन नकारात्मक शक्तियों से प्रभावित नहीं होते तभी तुम कसौटी पर खरे उतर सकते हो।

सर्वोत्तम का प्रकटीकरण

मैं एक बार शंकरलाल संगीत समारोह में संगीत सुनने गया था। वहाँ मेरी भेंट श्रीमती वीणा श्रॉफ से हुई जिन्होंने परम्परागत केश विन्यास और गहनों का अध्ययन किया था। जब उन्होंने बताया कि वे आयु के सातवें दशक में हैं तो मैंने उनसे उस राज़ के बारे में पूछा जो उन्हें बीस वर्ष से कम आयु का दर्शा रहा था। उन्होंने उत्तर दिया कि उन्होंने कभी किसी का बुरा नहीं चाहा।

ऐसा नहीं है कि वे यह नहीं जानती कि आदमी कितना बुरा और दुष्ट हो सकता है। वे हमेशा प्रयत्न करती हैं कि जो उनके संपर्क में आए, उसके बारे में सकारात्मक सोच कर उसमें जो श्रेष्ठ है उसे कैसे बाहर निकाला जाये। हम सब में अच्छाई और बुराई का समावेश है। हमारा बड़प्पन इसी में है कि हम इस योग्य बने कि जो मनुष्य हमें जीवन की इस यात्रा में मिलते हैं उनमें जो सर्वश्रेष्ठ है, हम उसे प्रकाशित कर सकें।

संभ्रम

बहुधा आश्चर्य होता है कि क्यों हमारे पूर्वजों ने इस संसार को एक भ्रांति की संज्ञा दी जबकि यह वास्तविक प्रतीत होता है। एक नजदीकी रिश्तेदार को जब मैंने नवजात पुत्री के साथ देखा तो यकायक मुझे इसका उत्तर मिला। मन निरन्तर भटकता रहता है जबकि हम सचमुच इसे एक स्थान पर स्थिर रखना चाहते हैं – जैसा कि बीटल्स के एक गीत में कहा गया है 'मेरे मन को भटकने से दूर रखो'। यह अत्यन्त दुष्कर कार्य है और अनेक वर्षो के ध्यान के बाद भी महान व्यक्ति इस प्रयास में असफल रहे हैं।

प्रकृति ने अनेक भ्रमों का समाधान करने की कोशिश की है जिन पर हम आसानी से एकचित्त हो सकते हैं और थोड़ी देर के लिये परम आनन्द का अनुभव भी कर सकते हैं। जब व्यक्ति शादी करता हैं तो उसकी एकाग्रता शारीरिक सुख पर होती है। जब इसकी नवीनता समाप्त हो जाती है तो प्रकृति उसे एक शिशु प्रदान करता है जिस पर पालकों का पूरा ध्यान केन्द्रित हो जाता है। जब वह बड़ा होता है और उसे देखभाल की कम जरूरत होती है, तब तक दूसरा शिशु आ जाता है और यह प्रक्रिया चलती रहती है।

जब हम अपने मन को यथार्थ से नहीं बाँध पाते तब प्रकृति इसे निश्चित करती है कि हम एक के बाद दूसरी चीज में अटके रहें। यह इस दृष्टि से अवास्तविक है कि वह हमें स्थायी आनंद नहीं दे सकता। एक बौद्धकालीन पाठ कहता है कि 'अर्थवान जीवन वह है जो व्यक्तिगत रूप से निरपेक्ष तथा अप्रतिबंधित स्वयं के कानून पर केन्द्रित हो और उस सीमा तक हो जहाँ तक मनुष्य अपने अस्तित्व के नियम के प्रति असत्य होता है'। परम आनन्द की वास्तविक स्थिति तभी संभव है जब मन गहन अध्ययन द्वारा गतिहीन हो। ऐसी स्थिति में आने के पष्चात ही मनुष्य को यह आभास होगा कि क्यों हमारे महान संतों ने इस संसार को माया कहा।

मन दरबार

अनुभव

स्वामी विवेकानंद ने एक बार स्वामी रामकृष्ण परमहंस से पूछा कि वह ईश्वर का साक्षात्कार कैसे कर सकते है? परमहंस ने उत्तर दिया कि अनुभव जीवन का सबसे प्रबल पक्ष है। इसी के माध्यम से कोई भी परम शक्तिमान की छवि देख सकता है। उन्होंने स्वामी विवेकानंद से कहा कि तुमने बहुत अधिक अध्ययन कर लिया है और वही उन्हें परम–सत्य की अनुभूति से वंचित कर रहा है।

आज के युग की रूपरेखा विशेषतः अनुभव पर आधारित है। आस्था निम्नतर स्तर तक गिर चुकी है और इसका पुनर्निर्माण व्यक्तिगत अनुभव के द्वारा ही किया जा सकता है। हमें बुराई का भी उतना यही अनुभव होना चाहिये जितना अच्छाई का। स्वर्ग का रास्ता नर्क से ही होकर जाता है इसलिये किसी को भी बुरे से बुरे का अनुभव करने में झिझकना नहीं चाहिये–यह विचार करते हुए कि कोई भी बीच रास्ते में फँसकर न रह जाये। यह एक सहारे के द्वारा संभव है और उसे पाने का एक तरीका है किसी भी प्रकार का ध्यान। युगों–युगों से भारत में हज़ारों प्रकार के ध्यान विकसित किये गये हैं।

जाँच करें

नियमों का परिपालन करना जीवन यात्रा का एक सरल रास्ता है पर एक और रास्ता है जो खतरों से भरा है, जहाँ पर या तो अत्यन्त लाभ मिलता है या अत्यन्त हानि। आज का युग दूसरे रास्ते का है। अब अपने पूर्वजों के समान एक बँधी हुई परिपाटी में काम करना मुश्किल है। फिर भी प्रत्यक्ष अनुभव से सत्य को असत्य से दूर करना सरल है।

तांत्रिक परंपरा सारी नकारात्मकता के साथ हमें प्रयोग करने को और उनसे ऊपर उठने को प्रेरित करती है। पेंच केवल यह है कि गुरु प्रक्रिया को ऐसे संचालित करे जिससे कोई उसमें उलझे नहीं। स्वामी रामकृष्ण ने स्वतः महिला गुरु ब्राह्मणी के निर्देशों में तांत्रिक अनुशासन का अभ्यास किया था। उन्होंने अपने प्रमुख शिष्य स्वामी विवेकानंद से कहा कि तुमने बहुत अधिक अध्ययन किया है और सत्य को प्राप्त करने के लिये अनुभव बहुत कम किया है। दूसरे शब्दों में वे उनसे जाँच करने के लिये कह रहे थे।

दुर्भाग्यवश आजकल सच्चे गुरू कठिनाई से प्राप्त होते हैं। इसलिये हमें अपने ही भीतर निर्देशों की तलाश करनी पड़ती है। प्रत्येक को योग और ध्यान के द्वारा आनंद शृंखला की पड़ताल करते हुए अपने भीतर ताकत विकसित करनी है। यह हमारे जलयान के लिये लंगर का काम करता है और उसे नियंत्रित करता है, खासकर उस समय जब जलयान अपने रास्ते से भटककर तेज़ धार में बहने लगता है।

अतः नवीनताओं को जानने की कोशिश करें किन्तु कभी यह न भूले कि आपको हर अनुभव से ऊपर उठना है। एक कहावत है कि स्वर्ग का रास्ता नर्क से होकर जाता है। डरें नहीं – केवल उस नारकीय भाग के निषेध के लिये अपने आपको तैयार करें।

योग

वर्त्तमान में योग को केवल हठ–योग के रूप में ही देखा जाता है। यथार्थ में इसमें अनेक योग अभ्यासों का समावेश होता है और नाद–योग उनमें से एक है। तथापि यह अंश केवल हठ–योग पर ही केन्द्रित होगा।

हठ–योग एक पूर्ण अनुशासन है जिसे इस देश में शताब्दियों पश्चात् परिशुद्ध किया गया है। यह एक साथ मन, शरीर और आत्मा में क्रियाशील होता है। यह संपूर्ण शरीर के अनुशासन से प्रारम्भ हो कर सूक्ष्म मन को प्रशिक्षित करता है तथा अन्त में आत्मा पर सक्रिय होता है। इस भाँति तीनों पहलुओं का स्पर्श किया जाता है। साधक की प्रगति के साथ एकाग्रता बदलती रहती है।

यदि एक बालक कुछ समय के लिये भी सीधा और शांत नहीं बैठ सकता तो वह अपनी परीक्षा में अच्छे अंक कैसे पाएगा ? हठ–योग का दैहिक पहलू शरीर को तो नियंत्रित करता है लेकिन मन भटकता रहता है। हठ–योग का मानसिक पहलू मन को चुस्त करता है और अपने नियंत्रण में लेता है जबकि आत्मा का पक्ष बालक को उत्साहित करता है और उसमें एक दीप्ति का प्रसर्जन होता है। जिस भी वस्तु को वह बालक स्पर्श करता है वह सुंदरतापूर्वक प्रकट होती है फिर चाहे वह बारहवीं कक्षा के अंक हों या आई.आई.टी., केट या लोक सेवा आयोग आदि की परीक्षायें। इसे एक बार करके देखें।

ध्यान क्यों करें

हम अपने पूर्वजों की अपेक्षा अधिक मेहनत करने वाले लोग हैं किन्तु संभवतः उतने अधिक सुखी नहीं हैं। हम कठिन परिश्रम करते हैं कि हम अच्छी शैक्षणिक संस्थाओं में प्रवेश पा सकें जो हमें उच्च वेतन वाली नौकरियाँ दिलाने में मदद कर सके जिससे हम वह सब खरीदने योग्य बन सकें जिसे पैसा और सत्ता खरीद सकते हैं।

यह हमें सुख की अनुभूति देगा। अन्ततः यह सब सुखी होने के लिये ही तो है। लेकिन हम अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिये कितना समय आत्म–निरीक्षण में खर्च करते हैं? हम सीढ़ियाँ चढ़ने में इतना अधिक व्यस्त हैं कि हम यह सोचते ही नही कि वे हमें कहाँ ले जायेंगी। जब हम किसी चीज की इच्छा करते हैं और वह हमें मिल जाती है तब हम कितना आनंदित अनुभव करते हैं परन्तु कितनी देर के लिये? हम अतिशीघ्र नई गाड़ी, नये मकान और विदेश में छुट्टियाँ व्यतीत करने के अभ्यस्त हो जाते हैं।

इन तमाम खुशियों में व्यतीत किये गये समय का योग हमारी जिंदगियों का बहुत छोटा सा प्रतिशत होता है। मैं एक दंपति के साथ कुछ समय रहा जो इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ मैनेजमेंट, अहमदाबाद से स्नातक हो जाने के बाद बहुत अच्छी नौकरी पा गये थे। उनका समुद्र के किनारे बहुत अच्छा आवास था, बहुत अच्छी कार थी और वे इतना अधिक कमा लेते थे कि संसार के विभिन्न हिस्सों में अवकाश पर जा सकते थे। प्रत्येक सुबह कभी – कभी रविवार को भी वे बहुत जल्दी उठ जाते और कार्यालय भाग जाते और देर रात थके माँदे घर आते। टी.व्ही. चालू किया जाता जिसके सामने दोनों या कोई एक थोड़ी देर बेवकूफों सरीखे निश्चल बैठते। उसके बाद दोनों सोने चले जाते और आने वाला दिन भी पहले के दिन सा ही बीतता। हाँ, इतना अवश्य है कि वे साल में एक बार एक सप्ताह के लिये बहामा या अन्य किसी जगह अवकाश पर चले जाते। उनके पास वह सब कुछ था जिसकी अधिकतर युवक आकांक्षा करते हैं। लेकिन क्या किसी को चिंतन के लिये थोड़ा समय नहीं देना चाहिये, क्या यही सब है जिसकी हम प्रत्याशा करते हैं?

हमारे लिये यह आवश्यक है कि थोड़ी देर के लिये ही सही, ये सोचें कि हम किस ओर बढ़ रहे हैं? यद्यपि समय का दबाव हमें ऐसा करने से रोकता है। यह बड़ी कंपनियों के हित में ही है कि वे कर्मचारियों को उन वस्तुओं के बारे में थोड़ा विचार करने के लिये प्रेरित करें जो उनके काम से असंबंधित हैं। यही कारण है कि कंपनियाँ बड़े वेतन देकर लोगों की सोच प्रक्रिया खरीद लेती हैं और उनसे बारह घंटे या उससे भी अधिक काम कराके उन्हें बहुत कम मौका देती है कि वे यह पता कर सकें कि वे किस दिशा में आगे बढ़ रहे हैं। यह बहुधा व्यक्ति को अवसाद की ओर ले जाता है क्योंकि उसे अंतर्बोध होता है कि वह कहीं अटक गया है। इस अवसाद के उपचार में उसे मनोचिकित्सक या दवाइयों का सहारा लेना पड़ता है जो उसे और अधिक असहाय बना देता है।

दूसरी ओर यदि वह ऐसे रोज़गार को अपनाने को तैयार हो जहाँ उसे भौतिक लाभ तो कम मिले किन्तु स्वयं के लिये समय अधिक मिले जिससे वह सुख की अवधि को अधिक विस्तृत करने के विविध प्रयोग कर सकेगा तो वह अपनी आतंरिक सुरक्षा को भी सुदृढ़ कर सकेगा। यह सुरक्षा उन अवसरों, जिनमें अवसाद सताता है, से निपटने में भी सहायक होगी। हमारे पूर्वजों ने ऐसा ही किया था और पाया था कि प्रतिदिन थोड़ा सा ध्यान या समाधि लगाने से वह सब मिलेगा जिसे पैसा नहीं खरीद सकता।

ध्यान योग की इतनी आश्चर्यजनक विधियाँ विकसित की जा चुकी हैं जो अलग अलग स्वभावों के लिये उपयुक्त हैं। ये हमें अपने अंतःकरण से सामंजस्य स्थापित कर समचित्तता प्राप्त करने में सहायक हैं। शांति और दीर्घ सुख इनके प्रत्यक्ष परिणाम होते हैं। जैसे–जैसे हम इस अभ्यास में पारंगत होते जाते हैं वैसे–वैसे विषाद के द्वन्द्वों की तीव्रता के पल कम होते जाते हैं और इन विषाद कालों से निपटने की हमारी योग्यता बढ़ती जाती है।

आपको जिस प्रकार का ध्यान योग उपयुक्त लगता है उसको प्रतिदिन कम से कम पंद्रह मिनट करने का प्रयास करें। यह प्रतिदिन किया जाना चाहिये। एक दिन की चूक भी आपको कई दिन पीछे धकेल देगी। ध्यान का एक लाभ यह होता है कि वह हमारी उस सोच–प्रक्रिया को एकाग्र करता है जो हमारे मन को केंद्रीकृत करती है। इस कारण हम अधिक स्पष्ट देख सकेंगे कि हम किस दिशा में बढ़ रहे हैं और समयानुसार सही कदम

उठा सकेंगे। शास्त्रीय संगीत और नृत्य, ध्यान की सर्वोत्तम विधियाँ हैं। स्पिक–मैके हर वार्षिक सम्मेलन में संपूर्ण देश से विशाल संख्या में युवाओं को इस ध्यान के अन्यान्य प्रकारों के समीप लाने का प्रयास कर रहा है।

ध्यान योग की शक्ति – १

अकीरा कुरूसवा की फिल्म दि सेवन समुराई में एक दृश्य में दिखाया गया है कि कुछ खेतिहरों का एक समूह अपने गाँव को सात जापानी समुराई (योद्धा) की सहायता से डाकुओं के आक्रमण से बचाने की कोशिश कर रहा है। डाकुओं के पास पारंपरिक शस्त्र हैं लेकिन उन्होंने हाल ही में कुछ बंदूकें भी प्राप्त कर ली हैं। यह समुराइयों के लिये बड़ी समस्या बन गई है क्योकि उनके पास केवल तलवारें हैं। एक समुराई रात में बैठकर ध्यान लगाता है। तत्पश्चात् वह शांत चित्त होकर चुपके से दुश्मनों के शिविर में जाकर कुछ डाकुओं के सिर काटता है और कुछ बन्दूकें लेकर वापिस आ जाता है। आजकल हम अपने बच्चों को भोथरी तलवारों के साथ परीक्षा के लिये भेज रहे हैं। वे इस व्यवस्था के अभ्याघात को झेलने के लिये मानसिक रूप से तैयार नहीं हैं और तनावग्रस्त हैं। दूसरी ओर यदि हम उन्हें योग और ध्यान के द्वारा मन को धारदार करना सिखायें तो वे शांतिपूर्वक एकाग्रता के साथ इस द्वन्द्व में उतर सकते हैं और विजयी होकर लौट सकते हैं।

ध्यान की शक्ति – २

''जैसा आप सोचते हैं वैसे ही आप बन जाते हैं'' इसलिए यदि आप अपने मस्तिष्क में एक आदर्श रखें और उसके बारे में सोचते रहें तो आप उसकी ओर धीरे–धीरे लेकिन निःसंशय बढ़ते जाएँगे और कौन जानता है कि एक दिन आप उस तक पहुँच ही जायें। कुल मिलाकर ध्यान योग भी यही है। लेकिन यह कहना जितना सरल है, करना उतना ही कठिन। इसी को अनुभव कर हमारे मनीषियों ने ध्यान की विभिन्न पद्धतियाँ विकसित की हैं।

पर्वत शिखर पर पहुँचने के लिये अलग अलग व्यक्तियों के लिये अलग–अलग रास्ते होते हैं। जितने अधिक रास्ते होंगे, उतने ही अधिक व्यक्तियों की चोटी पर पहुँचने की संभावनाएँ होंगी। सारे रास्ते कठिन होते हैं और प्रत्येक को पाने में वर्षों लग जाते हैं। परन्तु प्रत्येक व्यक्ति, यदि वह इच्छा करे तो, एक न एक रास्ता अवश्य पा जाता है और यह उन विकसित या निर्मित रास्तों में से एक होगा जो उसके स्वभाव के अनुकूल होगा।

ध्यान निचले स्तर पर एकाग्रता को परिष्कृत करता है। कोई भी व्यक्ति यदि मन को एक जगह केन्द्रित करने का प्रतिदिन अभ्यास करता है तो एकाग्रता प्रोन्नत होती जाती है, ठीक उसी प्रकार जैसे कि भार वृद्धि के अभ्यास से शरीर सबल बनता है। कोई भी इस अभ्यास के द्वारा उत्कृष्ट होता जायेगा। वास्तविक फायदा इससे भी अधिक होगा और वह अनुभव के द्वारा ही विश्वस्त किया जा सकता है।

आश्रम: हमेशा के लिए

लड़कपन में मेरे माता पिता मुझे कई आश्रमों में ले जाते थे। पांडिचेरी के अरविन्द आश्रम में श्री माँ को टेबिल टेनिस खेलते देखने की, ताज़ा तैयार ब्राउन ब्रेड की सुगंध और वहाँ के फुटबॉल खेल की सुखद स्मृतियाँ आज भी मेरे पास है। मुझे याद है रायपुर के शंहशाही आश्रम के प्रशान्त वातावरण की, स्वामी जी के सुन्दर भजनों की और पास ही आवेग से बहते झरने की। ऋषिकेश का शिवानन्द आश्रम अति विशिष्ट था। स्वामी चिदानन्द की आँखों में सदैव एक चमक व्याप्त होती थी। वे बिना कुछ कहे ही व्यक्तियों को आकृष्ट कर लेते थे।

जब मैं बड़ा हुआ तो मैंने संसार के विभिन्न भागों में स्थापित आश्रमों की यात्रा की। न्यूयार्क के कैटस्किल पर्वतों में स्थापित स्वामी मुक्तानंद के साधनालय में गया, फ्रांस के एक मठ में ठहरा जहाँ भिक्षु ग्रेगोरियन मंत्रों के साथ ध्यान करते है। मैंने कलकत्ता में उस्ताद नसीर अमीनुद्दीन डागर के और पनवेल में फरीदुद्दीन डागर के आश्रमों में ध्रुपद का अभ्यास किया, इरिंजलाकुड्डा में गुरू अम्मानुर माधव चाक्यार और वाराणसी में पंडित किशन महराज के गुरुकुलों की यात्रा की, मुंगेर में बिहार स्कूल ऑफ योग में दो सप्ताह का केम्प किया तथा अन्य कई आश्रमों की यात्रा की। शिवानंद में संपूर्ण समर्पण का वातावरण, फ्रांस के मठ में मठाधीश की विनम्रता, उस्ताद अमीमुद्दीन डागर के आश्रम की प्रगाढ़ता और उस्ताद फरीदुद्दीन डागर के आश्रम में कठोर रियाज ने मेरे ऊपर अमिट छाप छोड़ी।

इन अनुभवों ने मुझे यह समझने में मदद की कि हमारे आश्रम वे वैज्ञानिक प्रयोगशालाएँ हैं जहाँ कार्यरत व्यक्ति उन शोध परिणामों के साथ, जिन्हें हमारे पूर्वजों ने प्राप्त किया था और गुरुओं ने कदम–ब–कदम निर्देशित किया था, अपनी ज़िन्दगी में प्रयोग करते हैं। हम सब लोगों को आश्रम में रहने की आवश्यकता नहीं है किन्तु मुंगेर के स्वामी निरंजनानंद सरस्वती जो कहते हैं, उसके अनुरूप हमें वर्ष में एक बार एक सही आश्रम की यात्रा अवश्य करनी चाहिये।

हम जिसे आध्यात्मिकता कहते हैं वह एक स्तर पर विशुद्ध बुद्धिमता और सूचना को वैज्ञानिक पद्धति द्वारा बड़े परिप्रेक्ष्य में प्रयोग करना ही है। बोध ागम्य मनुष्यों ने विभिन्न समय और विभिन्न स्थानों पर इस सच को प्रमाणि ात किया है। हम जानते हैं कि आइंस्टाइन एक महान वैज्ञानिक थे और ओटो हान एक महान शिल्प–विज्ञानी थे जिन्होंने आइंस्टाइन के सिद्धांतों को वास्तविक विखंडन में परिवर्तित कर अणुबम निर्मित किया। अभियांत्रिकों ने बाद में इसे अधिक उपयोगी अणुशक्ति में रूपातंरित किया। इसी प्रकार जीसस क्राइस्ट भी अनेक महान विचारों के प्रवर्तक थे जिन्हें उनके शिष्यों ने उत्तम जीवन की पद्धतियों के रूप में प्रचारित किया। चर्च ने इस आदर्श का अनुसरण किया और उसे व्यवस्थित तरीके से विस्तारित किया।

हम ऐसे अभियांत्रिक बन सकते हैं जो विभिन्न आश्रमों में विकसित वैचारिकता का उपयोग कर अपने जीवन को विस्तार दे सकते हैं। अपनी अंतरात्मा से जुड़ाव के लिये अनेक विधियाँ विकसित की गई हैं और प्रत्येक व्यक्ति स्वाभाविक रूप से अपने लिये एक विधि को प्रश्रय देता है। रास्तों की संख्या जितनी अधिक होती है उतने ही अधिक लोग लक्ष्य तक पहुँचते हैं। प्रत्येक सही आश्रम हमें वह मार्ग उपलब्ध कराता है जिसे मूल–अध्यापक ने अनुप्रस्थ किया था। भिन्न आश्रमों से विचार एकत्रित कर हम उस मार्ग को प्रशस्त कर सकते हैं जो हमारे लिये सर्वोचित हो।

आजकल अपनी छुट्टियों के दौरान अनेक युवक संसार के अनेक नगरों का भ्रमण करते हैं या अपनी रूचि के कार्य करते हैं अथवा कुछ यों ही समय नष्ट करते हैं। कुछ ही होते हैं जो आश्रमों में जाते हैं। स्पिक–मैके का राष्ट्रीय विद्यालय कार्यषाला कार्यक्रम आश्रमों को छात्रों तक लाने का एक प्रयास है। एक कहावत है कि 'पर्वत मुहम्मद तक नहीं आता, मुहम्मद को ही पर्वत के पास जाना पड़ता है''। ये प्रेरणा विद्यालय इस प्रकार रचे जाते हैं कि छात्रों को महान उस्तादों की छत्रछाया में रहने का अनुभव दे सकें, अनेक मानवीय उद्यमों के गुण उनसे सीख सकें और उनके प्रदर्शनों को देख सकें। संभवतः यह अनुभव मेरे युवा मित्रों के जीवन को समृद्ध कर सकेगा।

(यह आलेख टाइम्स ऑफ इंडिया के 26 दिसम्बर 2006 के अंक में प्रकाशित हो चुका है)

स्पिक मैके

बोध है, निमित्त भी; संकल्प है, समर्थन भी

अमूल्य सांस्कृतिक धरोहर के प्रति – शास्त्रों की सहमति की ठोस नींव पर खड़ी भारतीयता की भव्य स्वर्ण अट्टालिका! सहन द्वार से देहरी, आँगन और दीवारों तक के निर्माण और समृद्धि की कथा को युवा पीढ़ी के बीच गतांक से सायास आगे बढ़ाना स्पिक मैके का मूल लक्ष्य है।

अतिरिक्त प्रेरणार्थक दायित्व के प्रति – खबरों के हवाई हमलों ने किसी एक शहर को नहीं, सारी दुनिया को प्रभावित किया है। हर पल नई सूचनाओं का सैलाब–सा उमड़ता है और पता नहीं चलता कि पैतृक कोश की संचित पूंजी से कब क्या बह गया। ऐसे में वांछित है कि भारतीय परिवेश की गर्भगुहा में स्थित दर्शन, योग और ध्यान, जो विश्व में संस्कृति की अद्वितीय मिसाल हैं, को आदत में ढाल लेने की दिशा की ओर लेकर चलें।

नैतिक मूल्यपरक शिक्षा के प्रति – ज्ञान का चाप और आचार का शर हो तो लक्ष्य से कोई चूक नहीं सकता। अध्यात्म के लिए निवेदन और सौंदर्य के लिए आग्रह, इस निर्माल्य को आत्मसात करने, इसमे समाहित होने की क्षमता को विशेषतः युवाओं में जगाना, स्थापित करना ताकि वे स्पर्धा की तेज़ दौड़ और तीव्र गति से हो रही तकनीकी प्रगति से हमकदम हों, पर अपनी जड़ों की पूरी जीवंतता के साथ।

जीवन, सहज प्रवाह और तेजस्विता से भरपूर नई पौध के प्रति – भावी पीढ़ी को उसके जन्मसिद्ध अधिकार, उत्तराधिकार, उसकी जड़, परंपरा व पहचान का अहसास दिलाना, जागरुक करना जो उसकी सोच को एक सुलझी दिशा दे सके, इस प्रयास यात्रा के उद्देश्य का विशिष्ट अंश है।

निष्काम कर्म की रंगछवि के प्रति – मुक्तमना और समर्पण भावना रखने वाले कार्यनिष्ठों को एक छत के नीचे लाने के लिए स्पिक मैके की प्रतिबद्धता जो हर क्षेत्र से पधारें और किसी पद लालसा के अधीन न होकर अपनी क्षमताओं का दान करें।

शिव और सुंदर की उदात्त भावना के प्रति – संस्कृत, उदार व संवेदनशील लोगों की सहभागिता को बनाए रखना जो प्रेरित हों और प्रेरित करें।

इस यात्रा में आप हमारे साथ हों – गुज़ारिश है!

मुख्यालय	:	४१/४२, लखनऊ रोड, दिल्ली ११००५४, भारत
दूरभाष/तंत्र संप्रेषण	:	०११–२६५६६४५१
ई–मेल	:	info@spicmacay.com
वेब ग्रूप	:	spicmacayites@yahoogroups.com
वेबसाइट	:	www.spicmacay.com

takshila तक्षशीला एजुकेशनल सोसाईटी
के सौजन्य से इस पुस्तक का प्रकाशन हुआ